'पूर्ण'-पराग

अर्थात्

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का जीवनचरित एवं
उनकी रचनाओं का आलोचना-
वलित परिचय और संग्रह

लेखक

श्री हरदयालुसिंह

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड; प्रयाग



प्रथमावृत्ति] सन् १९४१ ई० [मूल्य

Published by
K. Mittra.
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

प्रस्तावना

'पूर्ण'-पराग सहृदय पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए हमें विशेष आनन्द होता है। इसमें हमने 'पूर्ण'जी की बहुत सी रचनाओं के सुन्दर-सुन्दर अंशों को उद्धृत किया है। 'चन्द्रकला भानुकुमार' नाटक का अधिकांश पद्यत्रलित प्रसङ्ग और 'धाराधर-धावन' का उत्तर मेघ भी सङ्कलित किया गया है। कहना न होगा कि ये दोनों ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से बड़े ही सुन्दर हैं। हमारे विचार से कालिदास के भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति या तो राजा लक्ष्मणसिंह ने की है या राय देवीप्रसाद ने। अन्य अनुवादकों का परिश्रम ऐसा सराहनीय नहीं है।

इनके अतिरिक्त 'पूर्ण'जी की अन्य स्फुट कविताओं का संग्रह भी दिया गया है। इनमें दो-एक तो व्रजभाषा की हैं परन्तु और खड़ी बोली की हैं। देशकाल के अनुरोध से उस समय 'पूर्ण'जी ने व्रजभाषा का आग्रह प्रकारान्तर से कम कर दिया था। पर 'रसिकमित्र' में उस समय भी वे व्रजभाषा में लिखा करते थे। उस समय तक खड़ी बोली का मार्ग इतना प्रशस्त नहीं हो सका था। तब तक खड़ी बोली को काव्यभाषा कहने में लोगों को सकोच बना ही था। 'पूर्ण'जी ने उस समय खड़ी बोली में रचना कर यह सिद्ध कर दिया कि खड़ी बोली में भी सराहनीय काव्य लिखा जा सकता है, यदि कवि में वास्तविक प्रतिभा हो। उनका

विचार था कि यदि उर्दू, फ़ारसी, अरबी तक में सुन्दर कविता लिखी जा सकती है तो खड़ी बोली में क्यों नहीं लिखी जा सकती।

यदि 'पूर्ण-पराग' का जनता ने स्वागत किया तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे और आगे चलकर इसी प्रकार अन्य कवियों पर आलोचना-वलित काव्यसंग्रह लिखने का साहस करेंगे।

प्रयाग
मार्गशीर्ष १५, १९९६

विनयावनत
श्री हरदयालुसिंह

विषय-सूची

भूमिका

मङ्गलाचरण

सवैया

मेलत माल लला गर मैं,
अभिलाष भरी मन मैं अति भारी।
लाज सकोच के पाले परी,
दृग सामुहे जोरि सकै न कुमारी॥
सीख सयानी सखीनि की मानि कै,
डारि दियो हरवा हिये प्यारी।
राघव पाँय छुये सकुचै,
दुख द्वन्द दरै मिथिलेसकुमारी॥

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का जीवनचरित

संवत् १९७२ के पहले जिन लोगों का कानपुर के जीवन से कोई भी सम्बन्ध रहा है, उन्हें राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का स्मरण अवश्य होगा। क्या सामाजिक, क्या राजनीतिक, क्या धार्मिक सभी क्षेत्रों में राय साहब प्रमुख भाग लिया करते थे। राय साहब श्रीवास्तव खरे कायस्थ-वंश की विभूति थे। इनके पूर्वजों में विप्रदास नाम के एक बड़े ही प्रतिष्ठित महानुभाव थे। ये मुग़ल

सम्राटों के राज्य में एक उच्चपदारूढ़ चकलेदार थे। इनके अधिकार में ८४ गाँव थे और ढाई सौ रुपया मासिक इनका वेतन था। सम्राट् की ओर से इनकी नियुक्ति कानपुर मण्डलान्तर्गत इस्माइलपुर, वर्तमान घाटमपुर तहसील के भदरस, गाँव में हुई।

इन्हीं मुंशीजी के वंश में राय सोहनलाल हुए। इनके पुत्र का नाम राय रामगुलाम था। राय साहब कानूनगो हो गये। थोड़े ही दिनों में वे अपने गाँव के बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाने लगे। कानूनगो साहब एक धर्मप्राण महानुभाव थे। गुणग्राहिता और उदारता की मात्रा उनमें बहुत अधिक थी। धार्मिकता के कारण ही राय साहब को व्रत-पूजा आदि में अटल विश्वास था। आप ने द्वादश वर्ष पर्यन्त विधिवत् व्रत करके भगवान् भुवनभास्कर को प्रसन्न किया, जिसके परिणाम-स्वरूप आपके चार पुत्र और एक कन्या हुई और ईश्वर की कृपा से ये सभी प्रतिष्ठित पदों पर समासीन हुए। पुत्रों के नाम थे राय अयोध्याप्रसाद, राय लीलाधर, राय वंशीधर और राय मुरलीधर।

संवत् १९१४ में जब भारत में सिपाही-विद्रोह हुआ तब राय रामगुलामजी ने कई अँगरेजों को गुप्त रूप से अपने गृह में आश्रय दिया। जब इस बात का पता विद्रोहियों को लगा तो उन्होंने आपका घर लूट लिया। फलतः कानूनगो साहब की वर्षों की कमाई बात की बात में स्वाहा कर दो गई और उन्हें अपने सुपुत्र राय वंशीधर के पास जाकर आश्रय ग्रहण करना पड़ा, जो उस समय मध्य प्रदेश में वकालत करते थे। मुंशी

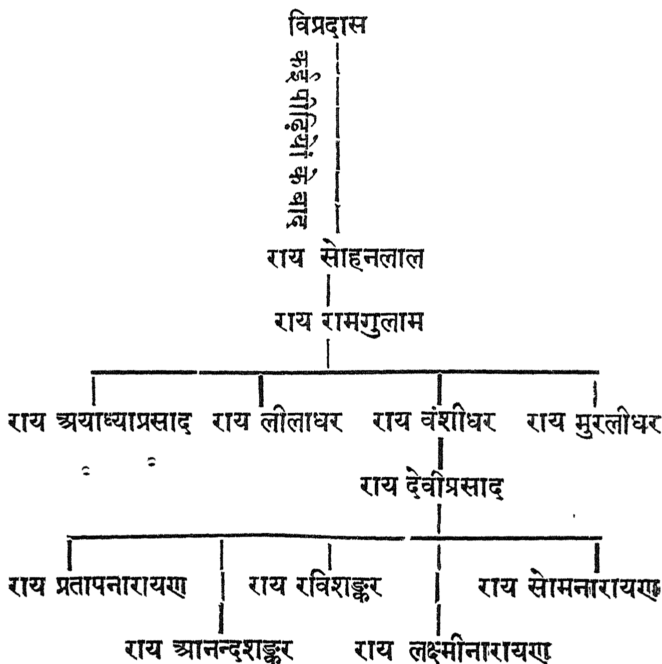
वंशीधर का विवाह भूपाल निवासी मुंशी शङ्करप्रसाद की कन्या यमुनादेवी के साथ हुआ था। मुंशीजी बड़े अच्छे कवि थे। उन्हीं यमुनादेवी के गर्भ से चरितनायक राय देवीप्रसाद का जन्म मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी संवत् १६२५ को जबलपुर में हुआ।

मुंशी लीलाधर का एक कान कट गया था। इस सम्बन्ध में एक बड़ी मनोरंजक कथा है। उन दिनों नवाबी थी। प्राय: सभी लोग तलवार बाँधते थे। मुंशी रामगुलाम ने अपने पुत्रों को शिक्षा दिलाने के लिए जिन मौलवी साहब को नियुक्त कर रक्खा था, वे भी तलवार बाँधकर पढ़ाने आया करते थे। एक दिन दुर्भाग्यवश मौलवी महोदय ने बालक लीलाधर से पूर्व पाठ के विषय में प्रश्न किये, परन्तु ये उत्तर न दे सके। मौलवी साहब को उस समय बड़ा क्रोध आया और ज्योंही मौलवी साहब ने उन्हें मारने को हाथ उठाया त्यों ही लीलाधरजी घबराकर भाग खड़े हुए। उनको डरवाने के लिए मौलवी साहब ने अपनी तलवार खींच ली। मारने का तो विचार था नहीं, पर न जाने कैसे वह तलवार लीलाधर के कान में लग गई और वह साफ़ हो गया।

घबराये हुए लीलाधर को संज्ञाहीन करने के लिए इतनी ही घटना पर्याप्त थी। मौलवी साहब ने उन्हें फिर लाकर यथास्थान बिठलाया। थोड़ी देर में यह समाचार अन्तःपुर में पहुँचा और स्त्रियों ने बड़ा कुहराम मचाया। मुंशीजी घर में बैठे हुए धूम्रपान कर रहे थे। आकस्मिक हाहाकार सुनकर वे अपने कमरे से निकल आये और वास्तविक रहस्य जानकर

स्त्रियों को बहुत कुछ समझाकर उन्होंने शान्त किया। मौलवी साहब का क्रोध-कृशानु भी कुछ शान्त हो चुका था। बाहर आकर मुंशी रामगुलाम ने मौलवी साहब से प्रार्थना की कि कृपा करके इसे थोड़ी देर के लिए अवकाश दे दीजिए, जिससे यह शल्य-चिकित्सक के पास जाकर अपना कान बँधवा आवे। मौलवी साहब ने उन्हें आज्ञा दे दी, तब मुंशी रामगुलाम उन्हें कान सिलवाने के लिए ले गये।

राय देवीप्रसादजी का वंश-वृक्ष इस प्रकार है—



राय वंशीधर को बहुत दिनों तक अपने होनहार पुत्र का उन्नति-सुख देखना बदा न था। इसलिए चार ही वर्ष बाद वे परधाम पधारे और बालक देवीप्रसाद की शिक्षा-दीक्षा एवं पालन-पोषण का भार उनके पितृव्य राय लीलाधर पर आ पड़ा। उन्होंने देवीप्रसाद को उच्च शिक्षा दिलवाई। राय देवीप्रसादजी बाल्यकाल ही से बड़े तीव्रबुद्धि थे। उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी। सुशील और शान्त तो वे सबसे अधिक थे। इन्हीं सद्गुणों के कारण राय लीलाधरजी ने इन्हें बहादुर की उपाधि दे रक्खी थी।

रायपुर ज़िला स्कूल से, संवत् १९३८ में, राय साहब ने प्रथम श्रेणी में मिडिल की परीक्षा पास की, जिसके पुरस्कार-स्वरूप उन्हें छात्रवृत्ति मिली। संवत् १९४१ में आपने कलकत्ता युनिवर्सिटी से मैट्रिकुलेशन की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। हमारे पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि उस समय कलकत्ता युनिवर्सिटी का क्षेत्र आजकल जैसा संकीर्ण न था। उन दिनों इसकी परिधि के अन्तर्गत पञ्जाब, हैदराबाद एवं आसाम तक के विद्यालय सम्मिलित थे। इसलिए उन दिनों उक्त युनिवर्सिटी की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होना वास्तव में बड़े ही गौरव की बात थी। साधारण छात्रों से तो इस बात की आशा करना ही व्यर्थ था।

संवत् १९४३ में राय साहब उसी यूनिवर्सिटी की इंटरमीडियट परीक्षा में बैठे और उसमें भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए।

संवत् १९४५ में यहीं से आपने बी० ए० की परीक्षा पास की। बी० ए० पास करने के उपरान्त आपका ध्यान कार्य्य-क्षेत्र-निर्वाचन की ओर गया। इस समय वकालत एक स्वतन्त्र एवं प्रतिष्ठास्पद व्यवसाय था। राय साहब के पितृव्य भी एक अच्छे वकील थे, फलतः उनका ध्यान वकालत की ओर गया और उन्होंने कलकत्ता यूनिवर्सिटी से बी० एल्० की परीक्षा दी। इसमें आपका नम्बर उत्तीर्ण छात्रों में तीसरा आया।

राय देवीप्रसाद के चचा के पुत्र राय दुर्गाप्रसाद नागपुर में वकालत करते थे। वहीं पर रहकर राय देवीप्रसाद ने दो वर्ष तक वकालत सीखी और जब इस काम में निपुण हो गये तब आपने कानपुर को अपना कार्य्यक्षेत्र बनाया और वहाँ रहकर आपने यश, धन और प्रतिष्ठा सभी कुछ प्राप्त किया। उस समय कानपुर के वकीलों में पण्डित पृथ्वीनाथजी का नाम अधिक प्रसिद्ध था। पण्डितजी उस समय कानपुर में सार्वजनिक जीवन के कर्णधार थे। पण्डितजी के निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर ही राय साहब ने लोकोत्तर कीर्त्ति उपार्जित की।

भूपाल रियासत के निवासी मुंशी शङ्करप्रसाद हिन्दी के एक अच्छे कवि थे। वे 'दास' के नाम से कविता लिखते थे। ये 'दास' उपनामवाले भिखारीदास कवि से भिन्न थे। इन्हीं मुंशी शङ्करप्रसाद की कन्या से राय देवीप्रसादजी का प्रथम विवाह हुआ था। मुंशीजी के सान्निध्य से राय साहब की प्रवृत्ति हिन्दी-कविता की ओर हुई।

उन्होंने राय साहब को काव्यशास्त्र का विशेष अभ्यास कराया था।

मध्यप्रदेश के रिटायर्ड डिप्टी कमिश्नर रायबहादुर डा० हीरालाल के कथनानुसार राय देवीप्रसाद का, संगीत और साहित्य के साथ छात्र-जीवन से ही अनुराग हो गया था। वे बड़े अच्छे वक्ता भी थे। एक बार वे विद्यार्थी-समिति में 'फीजिआलोजी' पर व्याख्यान दे रहे थे। जब उसका वे संक्षेप करने लगे तब एक श्रोता ने इस पर आपत्ति की। तब तो राय साहब ने उसकी ऐसी विस्तृत विवेचना की कि सुननेवाले दङ्ग रह गये।

कालेज में रहकर राय साहब ने उर्दू और फ़ारसी पढ़ी थी। हिन्दी की ओर उनका अनुराग तो अवश्य था, पर विधिपूर्वक इसका अध्ययन नहीं किया गया था। मुंशी शङ्करप्रसाद के सम्पर्क से राय साहब को जब हिन्दी-साहित्य की विशेषताओं का परिज्ञान हुआ तब तो आपका ध्यान इसकी ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ, और आप बड़े चाव से हिन्दी पढ़ने लगे। कुछ लोगों का मत है कि राय साहब ने भदरस-निवासी पण्डित कामताप्रसाद शास्त्री से संस्कृत का अध्ययन किया था, जिससे उनकी प्रवृत्ति संस्कृत-साहित्य की ओर भी हो गई थी। सम्भव है, मेघदूत का सुन्दर अनुवाद इसी सत्प्रवृत्ति का परिणाम हो। इसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि राय साहब संस्कृत के ललित भावों को भली भाँति समझते थे और संस्कृत के आधार पर अच्छी रचना भी कर लेते थे।

कानपुर में आने पर राय साहब को अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल वातावरण मिल गया। सार्वजनिक जीवन के जिस पथ को पण्डित पृथ्वीनाथजी ने प्रशस्त किया था, और जो उनके दिवंगत होने से शून्य सा हो रहा था, उस पर चलकर राय साहब ने कानपुर के सामाजिक जीवन में फिर हलचल उत्पन्न कर दी। आप कानपुर म्यूनिसिपल बोर्ड के सदस्य निर्वाचित किये गये। स्थानीय 'पीपुल्स असोसियेशन' ने आपको अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया। सनातनधर्मप्रवर्धिनी सभा के प्रबन्धक बनकर आपने प्रशंसनीय काम किया और सनातनधर्मावलम्बी वैष्णवों में राय साहब की बड़ी ख्याति हुई। कालान्तर में श्री ब्रह्मावर्त सनातनधर्म-महामण्डल का जन्म हुआ। इसमें राय साहब ने बड़े ही उत्साह के साथ काम किया। अनेक कार्य्य-कर्ताओं के रहते हुए भी इसके वार्षिक अधिवेशनों में राय साहब छोटे से छोटा कार्य्य करने में भी कभी संकोच नहीं करते थे।

राय साहब के छात्र-जीवन में जिस वक्तृत्व-शक्ति का हमें आभास मिला था, उसका पूर्ण विकास कानपुर में आकर दिखलाई पड़ा। उस समय यहाँ कोई ऐसी संस्था न थी, जिसके विशेष अधिवेशन पर राय साहब का व्याख्यान न होता हो। सनातनधर्मसभा के तो वे कर्णधार ही थे। एक बार इसका वार्षिक अधिवेशन हुआ। विद्यावारिधि पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र व्याख्यान देने के लिए बुलाये गये थे। उनके भाषण को सुनने के लिए सनातनधर्मी श्रद्धालु श्रोताओं का दल का दल उमड़ रहा

था। सभामण्डप खचाखच भरा हुआ था। जब पण्डित ज्वालाप्रसादजी के न आ सकने का समाचार राय साहब को मिला तब पहले उन्हें भी चिन्ता हुई, परन्तु श्रोताओं को निराश न करने के विचार से उन्होंने इस बात को किसी पर प्रकट न किया और बड़े उत्साह के साथ स्वयं व्याख्यान दिया। उस दिन राय साहब बराबर तीन घण्टे तक बोलते रहे। व्याख्यान ऐसा ललित था कि जनता मन्त्र-मुग्ध होकर सुनती रही। किसी ने कार्यक्रम की ओर ध्यान ही न दिया, न किसी ने विद्यावारिधिजी के आगमन की चिन्ता ही की। समय अधिक हो जाने के कारण उस दिन की वह सभा राय साहब के व्याख्यान के बाद विसर्जित कर दी गई। जब दूसरे दिन विद्यावारिधि पण्डित ज्वालाप्रसाद जी पधारे तब जाकर इस बात का वास्तविक पता चला।

राय साहब का जीवन सनातनधर्ममय था। कानपुर के 'वैकुण्ठ' नामक स्थान में आप रहते थे। वैकुण्ठ से लगभग सौ डग के आगे से ट्रामगाड़ी सरसइयाघाट तक जाया करती थी, परन्तु राय साहब वकील होते हुए भी अपने अमूल्य समय की ओर अधिक ध्यान न देकर एक रामनामी दुपट्टा ओढ़कर और गङ्गाजली हाथ में लेकर पैदल ही नित्य प्रति सबेरे गङ्गा-स्नान के लिए जाया करते थे। यह उनका नियम था।

सनातनधर्म के प्रबल समर्थक होने के कारण राय साहब आर्य्य-समाज के कार्य्यकलाप की बहुधा आलोचना किया करते थे। कभी-कभी तो यह आलोचना बड़ी तीव्र हुआ करती थी। आर्य्य-

समाजियों के प्रति उनके भाव अनुकूल नहीं थे। सनातनधर्म की सभा के अधिवेशनों के समय वे इन लोगों को कभी-कभी मधुर फटकार भी बताया करते थे।

राय साहब वास्तव में सच्ची धार्मिकता के समर्थक थे। उनकी समझ में जो बात इस धार्मिकता के प्रतिकूल पड़ती थी, उसी का वे डटकर विरोध करते थे और कभी-कभी तो इसी भाव को लक्ष्य करके वे काव्य रचना तक कर डालते थे।

गोरक्षा के वे प्रबल समर्थक थे। एक बार अयोध्या में बकरीद के अवसर पर हिन्दू-मुसलिम दङ्गा हो गया। साधुओं के पास अभियोग की पैरवी करने के लिए क्या रक्खा था? इस समय राय साहब ने अभियोग में फँसे हुए साधुओं की ओर से निःशुल्क पैरवी की और ऐसी बहस की कि कुछ अभियुक्त छूट भी गये। जब उक्त अभियोग शान्त हो गया तब राय साहब ने अयोध्या में गोवध बन्द कराने के लिए आन्दोलन किया और इस आन्दोलन में उनको इतनी सफलता मिली कि संयुक्त प्रान्त की सरकार ने हिन्दुओं के धार्मिक भावों की रक्षा करने के लिए अयोध्या में गोवध का निषेध कर दिया।

राय साहब की निस्स्वार्थ धार्मिकता का उदाहरण देने के लिए एक घटना पर्याप्त होगी। भदरस में आपने पहले 'आनन्द मङ्गल मण्डली' खोल रक्खी थी। बाद को आपने 'सदाशिव समिति' की स्थापना की। इन दोनों संस्थाओं को आर्थिक संकट बना रहता था। इसी समय रावतपुर निवासी ठाकुरों में एक गाँव

के सम्बन्ध में मुक़द्मा चल पड़ा। राय साहब ने इस मुक़द्मे की पैरवी जी तोड़कर की और अन्त में जीत भी गये। इस विजय के उपलक्ष्य में विजेता पक्ष ने राय साहब को गाँव का छः आना हिस्सा उपहार-स्वरूप अर्पण किया, परन्तु राय साहब के त्याग को देखिए। और कोई साधारण वकील होता तो इतने अर्थलाभ से अपने को धन्य समझता। पर राय साहब ने इस लाभ में से कुछ भी न लिया, प्रत्युत उसे 'सदाशिव समिति' के नाम लिखवा दिया।

सनातनधर्म के सिद्धान्तों के प्रमुख समर्थक होते हुए भी राय साहब सामयिक सुधारों के पक्ष में थे। अपनी द्वितीय स्त्री के विक्षिप्त होते हुए भी, अनेक मिलनेवालों के परामर्शों की अव-हेलना करके, उन्होंने तीसरा विवाह नहीं किया। बालविवाह और ठहरौनी के आप प्रबल विरोधी थे। संवत् १९६५ में अपनी भतीजी के विवाह के समय उन्होंने खरे और श्रीवास्तव दोनों दलों के कायस्थों को निमन्त्रण दिया और उनके साथ निस्संकोच भाव से भोजन भी किया।

सनातनधर्म के अद्वितीय स्तम्भ होने के कारण राय साहब को कुछ लोग कट्टरपन्थी तक कहते थे। उनके मरण के अनन्तर तो एक स्थानीय पत्र ने यहाँ तक लिख मारा था कि राय साहब जैसे उच्च कोटि के नेता के लिए यह बात कदापि शोभा नहीं देती थी कि वे सार्वजनिक मंच से किसी धर्मविशेष के प्रवर्तक की निन्दा करते अथवा उसके अनुयायियों को खरी-खोटी सुनाते। पर इस विचार में तथ्यांश कम था।

सनातनधर्मी होते हुए भी राय साहब स्थानीय थियासोफ़िकल सोसाइटी के सदस्य थे। उसका कारण यह था कि उस समय उसकी नीति में अधिक उदारता और व्यापकता एवं सार्वजनीनता थी। इसी नीति पर मुग्ध होकर राय साहब उसके सदस्य हुए थे और अपने नाम के पीछे बी० ए० एवं अन्य उपाधियों के साथ एफ़० टी० एस० (फेलो ऑफ़ दी थियासोफ़िकल सोसाइटी) लिखना बड़ा गौरव-सूचक समझते थे। थियासोफ़िकल सोसाइटी के सदस्य होने के कारण राय साहब श्रीमती एनी बेसेंट को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। एक बार तो उन्होंने श्रीमतीजी से श्रीब्रह्मावर्त सनातनधर्म-महासभा के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए आग्रह भी किया था; परन्तु भला पण्डित-मण्डली राय साहब के इस उदारतापूर्ण विचार से कैसे सहमत होती। उनके विचार से सभा में विदेशी और विधर्मी के पदार्पण करते ही सनातनधर्म रसातल को चला जाता।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि राय साहब पर श्रीमती बेसेंट के विचारों का अच्छा प्रभाव पड़ा था, जिसकी अभिव्यक्ति आगे चलकर उनकी रचनाओं में हुई है। वास्तविक बात तो यह है कि मनुष्य के जैसे विचार होते हैं, उसकी रचनाओं में उनका प्रतिबिम्ब अवश्य पड़ता है।

थियासोफ़िकल सोसाइटी के सिद्धान्तों का समर्थन करना और उसकी प्रवर्तिका विदेशीया एवं विजातीया महिला का स्वागत

करना ही इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि राय साहब को तथोक्त कट्टरता छू तक नहीं गई थी, जिसका दोषारोप हमारे आर्यसमाजी भाई राय साहब के ऊपर, बिना भली भाँति विचार किये हुए, करते थे।

राजनीतिक जीवन में भी राय साहब बड़ी निर्भीकता से भाग लेते थे, यद्यपि उनकी नीति नरम दल के नेताओं की समर्थक थी। जिस समय कानपुर में संयुक्त प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन का अधिवेशन हुआ उस समय उसकी स्वागत समिति के अध्यक्ष आप ही बनाये गये थे। स्वागताध्यक्ष की हैसियत से आपने जो व्याख्यान दिया था वह बड़ा ही मार्मिक था। एक बार महामना गोखलेजी का कानपुर में भाषण हुआ था। गोखलेजी अँगरेज़ी में भाषण देते थे। इस भाषण का राय साहब ने तत्काल ऐसा सुन्दर भाषान्तर किया था कि सुननेवाले मुग्ध हो गये थे।

पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि उस समय का राजनीतिक वातावरण आजकल के वातावरण से सर्वथा भिन्न था। वह समय ऐसा था कि वन्दे मातरम् का उच्चारण करनेवाले भी संदिग्ध दृष्टि से देखे जाते थे और उनका जीवन भी निरापद नहीं रहता था। उन दिनों सरकार के कार्य-कलाप की आलोचना करना प्रकारान्तर से अपने लिए जेल का पथ प्रशस्त करना था। अतः उन दिनों जो लोग राजनीतिक क्षेत्र में साहसपूर्ण कार्य्य करते थे, उनके धैर्य्य की अधिक प्रशंसा करनी चाहिए। कहना न होगा कि राय साहब उन दिनों भी बड़ी निर्भीकता के साथ राजनीतिक क्षेत्र में अग्रसर रहते थे।

निर्भीक राजनीतिक नेता होते हुए भी, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, राय साहब के विचार नरम दल के थे और उनमें यह नरमी आवश्यकता से अधिक थी। उस समय उनका विचार यहाँ तक था कि गरम दल की उग्र नीति के कारण ही देश में अशान्ति फैली हुई है। परन्तु इसके साथ ही वे सच्चे स्वदेशानुरागी भी थे, हिन्दू-मुसलिम एकता के विरोधी न थे। स्वदेशी के समर्थक थे। सन् १९०९ के "मिन्टो मार्ले रिफ़ार्म" का उन्होंने समर्थन किया था। यह नहीं कहा जा सकता कि यदि राय साहब आजकल जीवित होते तो उनके राजनैतिक विचार क्या होते।

राय साहब के राजनीतिक विचार महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय के विचारों से अधिक मिलते थे। पण्डित पृथ्वीनाथजी के देहावसान के अनन्तर राय साहब कानपुर के राजनीतिक जीवन के कर्णधार बने। उनकी नीति से कानपुर के सभी दल उनसे प्रसन्न रहते थे। सभी का यह विश्वास था कि राय साहब के विचार बड़े ही निष्पक्ष, स्वच्छन्द एवं निर्भीक होते हैं। हिन्दू-मुसलिम-एकता को राय साहब राजनीतिक सफलता का रहस्य मानते थे। सन् १९१३ में जब कानपुर में मछलीबाज़ार की मसजिद के सम्बन्ध में दङ्गा हुआ तो उस समय राय साहब ने मुसलमानों की वैसी ही सहायता की, जैसी कि उन्होंने अयोध्या के बकरीद के दंगे में फँसे हुए साधुओं की की थी।

राय साहब को बाल्यकाल ही से साहित्य की अभिरुचि थी। अनुकूल वातावरण पाकर इसमें और भी अभिवृद्धि हुई।

राय साहब ने कानपुर को अपना कार्यक्षेत्र निर्वाचित किया था, क्योंकि आपका गाँव भदरस इसी जिले की घाटमपुर तहसील में था।

कानपुर में स्थानीय कवियों और साहित्यानुरागियों ने मिलकर 'रसिकसमाज' नाम की संस्था खोल रक्खी थी। इसी रसिकसमाज के सम्पर्क से राय साहब के जीवन में नूतनता आई और उनके सहयोग से उक्त संस्था के जीवन में अपूर्व परिवर्तन हुआ। कानपुर में तो राय साहब के आने से पहले ही इस संस्था का जन्म हो चुका था, परन्तु अब तक इसने साहित्य की कोई उल्लेखनीय सेवा नहीं की थी। पं० ललिताप्रसाद द्विवेदी 'ललित जी' आजीवन इस सभा के अध्यक्ष रहे और 'पूर्ण' जी उपसभापति। इसी प्रकार 'रत्नेशजी' मन्त्री और 'सेवकजी' उपमन्त्री थे। नवीनजी, प्रवीणजी, वृजचन्द्जी, मन्नीलालजी, पण्डित मथुराप्रसाद्जी, बद्रीप्रसाद्जी और व्रजभूषणलालजी इस समाज के प्रमुख सदस्य थे और इन्हीं के द्वारा उन दिनों कानपुर में साहित्यिक चर्चा हुआ करती थी। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का भी कानपुर के साहित्यिक जीवन में विशेष स्थान था।

इसी समाज में पूर्ण जी सम्मिलित हुए और अपनी ललित कविताओं से लोगों का मनोविनोद करते रहे। कालान्तर में इसी समाज की ओर से आपने 'रसिकवाटिका' नाम की पत्रिका सवत् १६५४ में निकाली; परन्तु यह बहुत दिनों तक न चल सकी। साहित्यिक पत्रों का ऐसा ही दुर्भाग्य है। संवत् १९६२ में आपने

'रसिक-वाटिका' के स्थान पर 'रसिकमित्र' निकाला; पर यह भी चिरस्थायी न हुआ। इसका अंत रसिक-समाज के साथ ही हुआ।

इन दोनों पत्रों का अन्त होने से रसिक-समाज की सेवा का भार 'सुधासागर' नाम के पत्र पर पड़ा। यह पण्डित सहदेवप्रसाद जी वैद्य के उद्योग से चलता था। इसका मूल विषय वेदान्त था, पर राय साहब की मैत्री के अनुरोध से वैद्यजी इसमें रसिक समाज के विषयों को भी स्थान दे दिया करते थे। संवत् १९६८ में श्री ब्रह्मावर्त सनातनधर्म-महामण्डल की ओर से 'धर्मकुसुमाकर' पत्र निकालकर राय साहब प्रकारान्तर से रसिक समाज की सेवा करते रहे।

आज कानपुर में रसिकसमाज तो नहीं किन्तु उसी के भग्नावशेष पर बने हुए साहित्यमण्डल और साहित्यपरिषद् अवश्य हैं। इनमें साहित्य-मण्डल रसिकसमाज का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। कानपुर के वर्तमान साहित्यिक जीवन में दोनों संस्थाओं का हाथ है।

राय साहब बड़े ही सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। अपने समय के दीवानी के सर्वश्रेष्ठ वकील होते हुए भी उनमें अभिमान का लेश मात्र न था। पण्डितों और कवियों के तो वे कल्पतरु थे। सबसे जी खोलकर मिलते थे। उदार तो इतने थे कि अपने घर पर आये हुए विपक्षी तक का स्वागत करने में कभी संकोच नहीं करते थे। रात्रि के समय उनके स्थान पर कवियों का जमघट होता था।

उस समय आप बड़े से बड़े मुक़दमे की भी कोई परवा न करके काव्य-विनोद में ही अपना समय बिताते थे। राय साहब को संगीत की विशेष रुचि थी। नाटक में भाग लेने का भी उन्हें व्यसन सा था। वे अपने पास से बहुत सा रुपया ख़र्च करके भदरस में प्रतिवर्ष धनुषयज्ञ-लीला का अभिनय कराते थे और उसमें केवट बनकर बड़े प्रेम से भगवान् के चरण प्रक्षालन करते थे। 'नारदमोह' और 'हरिश्चन्द्र' का भी कई बार आपने अभिनय कराया था। भदरस में राय साहब के उद्योग से इतने समारोह के साथ इन नाटकों का अभिनय किया जाता था कि चारों ओर की जनता उन्हें देखने के लिए वहाँ आया करती थी।

इस प्रकार ४७ वर्ष की अवस्था तक राय साहब कानपुर के सार्वजनिक जीवन में प्रमुख भाग लेते हुए जनता की सेवा करते रहे। सन् १९१५ के फ़रवरी मास में महामना गोखले की मृत्यु हुई थी। इसका शोक मनाने के लिए हटिया में सार्वजनिक सभा हुई। राय साहब को व्याख्यान देने के लिए बुलाया गया। वे कचहरी में मिले और अधिक विलम्ब हो जाने के कारण घर न जाकर सीधे गाड़ी में बैठकर हटिया चले आये। वहाँ सभा में बैठे-बैठे उन्होंने 'हा गोखले' वाली कविता तैयार की।

राय साहब आशुकवि और आशुवक्ता थे। ईस्टर की छुट्टियों में प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन गोरखपुर में हुआ। उसके आप अध्यक्ष बनाये गये थे और अध्यक्ष की

हैसियत से आपने हिन्दी-साहित्य की गति-विधि के विषय में बड़ा ही मार्मिक भाषण दिया था। वहीं से राय साहब अपने साथ ज्वर लाये और यह ज्वर उनके प्राण लेकर ही छूटा। कानपुर के बड़े-बड़े चिकित्साविशारदों ने आपका औषधोपचार किया; परन्तु उससे कोई लाभ न हुआ। बुरी तरह से ज्वराक्रान्त होकर भी आपने वैद्यक एवं होमियोपैथिक दवा के अतिरिक्त और किसी प्रकार की औषधि अपने गले के नीचे नहीं उतारी।

नित्यप्रति उनकी अवस्था शोचनीय होती गई। एक मास के ज्वर ने उन्हें ऐसा तङ्ग किया कि बहुतों को उनके जीवन से निराशा हो गई। स्वयं राय साहब को भी यह बात मालूम हो गई थी कि इस बार रोगमुक्त होना कठिन है। इस रुग्णावस्था में भी उनका संगीत-विनोद कम न होने पाया। कोई न कोई गायक आकर उन्हें एकाध राग सुना ही जाया करता था। ज्वर को असाध्य समझकर राय साहब ने अन्त में दवा लेना भी छोड़ दिया। केवल गङ्गाजल को ही औषधि मानकर सेवन किया करते थे। बिठूर-निवासी स्वामी आत्मानन्द स्वयंप्रकाश सरस्वती को राय साहब अपना धर्मगुरु मानते थे। अन्त समय आपने स्वामीजी के दर्शन की अभिलाषा की और स्वामीजी भी इनकी बीमारी का तार पाकर हिमालय से दौड़े आये। राय साहब का देहावसान ३० जून सन् १९१५ को मध्याह्न के समय हुआ था।

ऐसे सर्वदलप्रतिष्ठित नेता के देहावसान का दुःखद समाचार फैलते ही कानपुर भर में विषाद का नद उमड़ पड़ा। नगर के

मुख्य-मुख्य व्यापारिक केन्द्रों में सन्नाटा छा गया। 'बार असोसियेशन' और कचहरी बन्द कर दी गई। इनकी अर्थी के साथ विशाल जनसमूह प्रयाग नारायण के मन्दिर से चला। राय साहब की दुःखद मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए नगर में सभाएँ हुईं। इनमें से एक तो स्थानीय क्राइस्ट चर्च कालेज के अहाते में हुई थी। उसके अध्यक्ष मण्डलाधीश कलक्टर साहब नियत किये गये थे। उसमें क्राइस्ट चर्च कालेज के तत्कालीन प्रधानाचार्य श्रीयुत एम० एस० डगलस ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में राय साहब की उन सेवाओं का उल्लेख किया था, जो इन्होंने लॉ प्रोफ़ेसर की हैसियत से उक्त कालेज की की थी। कानपुर के तत्कालीन लब्धप्रतिष्ठ वकील श्रीयुत बाबू आनन्दस्वरूप ने भी बड़े मर्मग्राही शब्दों में अपना हृदयोद्गार प्रकट किया था। दूसरी शोकसभा महाराज प्रयागनारायण के मन्दिर में हुई थी। इसके अध्यक्ष कानपुर के प्रतिष्ठित वकील श्रीयुत बाबू विक्रमाजीतसिंहजी हुए थे। आज भी आप कानपुर के सनातनधर्म-महामण्डल के नेता हैं।

नगर की अन्य संस्थाओं ने जब राय साहब की मृत्यु पर इतना शोक प्रकट किया था तो फिर उन्हीं के पाणिपल्लव की छाया में बढ़ा हुआ 'रसिक समाज' कैसे पीछे रहता। कानपुर के पण्डितों और कवियों ने इसी अधिवेशन में राय साहब की अकाल-मृत्यु पर अपने हृदय की शोकश्रद्धाञ्जलि समर्पित की थी। राय साहब की मृत्यु के अनन्तर उनके पाँच पुत्र, दो कन्याएँ और तीसरे विवाह की स्त्री विद्यमान थीं।

राय देवीप्रसादजी की रचनाएँ

यों तो राय साहब की स्फुट रचनाएँ बहुत सी हैं, परन्तु उनमें १ चन्द्रकला भानुकुमार नाटक, २ धाराधरधावन, ३ स्वदेशी कुण्डल, ४ राम-रावण-विरोध, ५ राजदर्शन, ६ वसन्त-वियोग आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हम पीछे कह आये हैं कि राय साहब को बाल्यकाल से ही सङ्गीत और साहित्य की रुचि थी और आगे चलकर यह रुचि और भी प्रगाढ़ हो गई। राय साहब ने 'रसिकबाटिका', 'रसिकमित्र' और 'धर्मकुसुमाकर' के द्वारा भी हिन्दी की उल्लेखनीय सेवा की। राय साहब वेदान्त के अनन्य भक्त थे, इसकी झलक उनकी बहुत सी रचनाओं में देखी जा सकती है। राय साहब ने भगवान् शङ्कराचार्य प्रणीत 'तत्त्वबोध' एवं 'मृत्युञ्जय' का पद्यवलित भाषान्तर किया था। संस्कृत के लोक-विश्रुत 'रम्भाशुक-संवाद' का पद्यवलित अनुवाद भी अपने ढङ्ग की एक ही रचना है। इन अनुवादों से राय साहब की संस्कृत-साहित्य-मर्मज्ञता तो प्रकट होती ही है, साथ-साथ उनकी कवि-प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिलता है।

इनके अतिरिक्त राय साहब की स्फुट कविताएँ भी बहुत सी हैं। यदि इनका एक सुन्दर संग्रह प्रकाशित कर दिया जाय तो हिन्दी-साहित्य का बड़ा उपकार हो।

अब 'पूर्ण' जी की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और विवेचन उपस्थित किया जाता है—

चन्द्रकला भानुकुमार नाटक

यह 'पूर्ण'जी की एक नाटकीय रचना है। इसका निर्माण संवत् १९४७ में आरम्भ हुआ था। जिस समय 'पूर्ण'जी जबलपुर कालेज में बी० ए० में पढ़ते थे, उस समय तक इसके पाँच अङ्क बन चुके थे। संवत् १९४६ में जब 'पूर्ण'जी नागपुर गये, तब इसमें दो अङ्क और बढ़ाये गये। उस समय से फिर इसकी रचना प्रकारान्तर से बन्द सी हो गई। फिर इसमें संवत् १९५७ में हाथ लगाया गया, जब 'पूर्ण'जी ने कानपुर में आकर वकालत आरम्भ की। कई अनिवार्य कारणों से फिर भी यह तीन वर्ष तक न छप सका। अन्त में श्रावणी पूर्णिमा संवत् १९६० को रसिकसमाज की ओर से यह प्रकाशित किया गया।

साधारणतया नाटकों की कथा पुराणों से ली जाती है। कोई-कोई नाटक ऐतिहासिक होते हैं और कुछ काल्पनिक भी होते हैं। प्रस्तुत नाटक काल्पनिक है। इसमें प्राचीन काल के आदर्शों और व्यवहारों का प्रतिबिम्ब देखने में आता है। प्राचीन हिन्दी नाटक-परिपाटी के अनुसार इसका गद्यभाग खड़ी बोली में और पद्यभाग व्रजभाषा में है। गद्य की अपेक्षा हमें इसका पद्यभाग अच्छा लगता है। यद्यपि इसके सभी पद्य राय साहब ही के बनाये हुए नहीं हैं; प्रत्युत तत्कालीन रसिकसमाज के कुछ अन्य सदस्यों के भी बनाये हुए हैं। परन्तु 'पूर्ण'जी ने इनका सुन्दर सदुपयोग किया

है। राय साहब॰घनाक्षरी बड़ी सुन्दर लिखते थे। उनके सवैये भी सुन्दर हुआ करते थे; फलतः प्रस्तुत नाटक के कवित्त बड़े सुन्दर हैं।

यह संयोगान्त नाटक है। मेघदूत ऐसे करुण काव्य के अनुवादक ने वियोगान्त नाटक क्यों नहीं लिखा, इसका कारण यह है कि एक तो भारतीय साहित्य में वियोगान्त नाटक का स्थान ही बहुत संकुचित है, दूसरे दयार्द्रहृदय नाटककार अपने नायक अथवा नायिकाओं को सदा के लिए वियोगाग्नि में दग्ध करना नहीं चाहते।

इस नाटक में देवीप्रसादजी ने प्राचीन काल का चित्र अंकित किया है। नाटक मानवजीवन का प्रतिबिम्ब कहा गया है। समाज के सभी अङ्गों के चित्र इसमें अङ्कित किये जाते हैं।

इस नाटक का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—विजयनगर एक सुन्दर देश था। वहाँ पर अमरसिंह नाम के एक राजा थे। इनके दो लड़के थे—भानुकुमार और चन्द्रकुमार। इनके मन्त्री के पुत्र का नाम प्रतापकुमार था जो भानुकुमार का सच्चा मित्र था। जीवन की सभी दशाओं में यह भानुकुमार के साथ रहता था। इसका विवाह कञ्चनपुर के महाराज लोकसिंह के प्रधान मन्त्री विक्रान्त की कन्या चन्द्रावली के साथ हुआ था। विजयनगर में श्रीकान्तदास नाम के एक बड़े धनाढ्य सेठ थे। लक्ष्मी की अनुकूलता के कारण उन्हें किसी बात की कमी न थी।

कालान्तर में श्रीकान्तदास के पुत्र का विवाह कञ्चनपुर में ही हुआ। इसमें प्रतापकुमार और भानुकुमार दोनों ही बारात में गये। बरातियों में बहुत से लोग मनचले भी हुआ करते हैं, और उन्हें

इधर-उधर घूमने की भी बड़ी रुचि हुआ करती है। एक दिन राजकुमार भानुकुमार अपने मन्त्रिकुमार के साथ घूमते-घूमते कञ्चन-पुराधीश की वनिताबाटिका में जा पहुँचे और वहाँ की शोभा देखकर मुग्ध हो गये। वसन्त ऋतु ने तो वहाँ मानों अपना स्थायी निवास बना लिया था।

इसी समय राजकन्या चन्द्रकला अपनी सखियों के साथ उद्यान की शोभा देखने के लिए आई। इसमें और चन्द्रावली में अभिन्नमैत्री थी। मालती नाम की इसकी अन्य सखी काव्य-रचना में बड़ी निपुण थी। कालिन्दी सुन्दर चित्रकारिणी थी। सुदेवी यद्यपि मूर्ख उद्यानपाल की कन्या थी, पर राजकुमारी के निरन्तर सान्निध्य से उसमें भी पर्याप्त सभ्यता आ गई थी। राज-कुमारी अपनी सखियों के साथ जब उद्यान में आई तब इन लोगों में बड़ा ही सरस प्रसंग छिड़ा। सहेलियों के संवाद में जैसा स्वारस्य होना चाहिए, उससे यह भरा था। प्रतापकुमार और भानुकुमार दोनों ही वाटिका के एक भाग में एक गुल्म की ओट में छिपे हुए इस सरस संवाद का आनन्द ले रहे थे। सौभाग्यवश यह संवाद उन्हीं के विषय में था। द्वारचार के दिन चन्द्रकला और चन्द्रावली दोनों ही अपने पिता के साथ सेठजी के पास गई थीं और वहीं पर भानुकुमार को देखकर चन्द्रकला ने उन पर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया था।

थोड़ी देर में राजकन्या आकर झूले पर बैठ गई। सुदेवी झुलाने लगी। मलारें गाई जाने लगीं। इसके मधुर स्वर ने भानुकुमार का

अनुराग और भी बढ़ा दिया। अन्त में वह चन्द्रकला से मधुर मिलन का सुख-स्वप्न देखने लगा। वाटिका में रात्रि अधिक बीत गई थी। इसलिए वहाँ अब अधिक विलम्ब करना उचित न था। फलत: भानुकुमार जनवासे को लौट आया और चन्द्रकला अब अपनी सखियों के साथ राजमन्दिर में चली गई। अपने-अपने स्थान को तो दोनों ही चले गये; परन्तु दोनों ही एक दूसरे का हृदय अपने साथ लेते गये, जिससे न तो राजमन्दिर में चन्द्रकला को चैन पड़ा और न जनवासे में भानुकुमार ही को। वाटिका से चलते समय भानुकुमार राजकुमारी के नाम एक प्रेमपत्र लिखकर अपने साफ़े के सूत से वृक्ष में बाँध आये।

भानुकुमार की यहाँ कुछ और ही दशा हो गई। जब सेठ श्रीकान्तदास को प्रतापकुमार के द्वारा राजकुमार के अस्वास्थ्य का पता चला तो वे तुरन्त उनके शिविर में देखने गये। राजकुमार ने उन्हें यात्रा करने का परामर्श दिया और कहा कि आप चिन्ता न करें। मैं भी दो-एक दिन में आ जाऊँगा; परन्तु प्रतापकुमार को यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने राजकुमार को समझाया कि यहाँ अधिक रहना अच्छा नहीं है। बड़े महाराज इसका न जाने क्या अर्थ लगायें।

हाँ, एक बात अवश्य है कि यहाँ आने से कञ्चनपुराधीश के साथ घनिष्ठता हो गई है; इसलिए यात्रा से पहले उनसे भेंट करना भी आवश्यक है। इस प्रकार इन दोनों में वार्तालाप हो ही रहा था कि कञ्चनपुराधीश ने उनके पास एक पत्र भेजा। इस पत्र

को देखते ही भानुकुमार का ध्यान पहले तो अपनी अविनय की ओर गया कि कहीं ऐसा न हो कि महाराज को मेरी धृष्टता का पता लग गया हो; परन्तु जब उसने पत्र खोलकर पढ़ा तब उसे सन्तोष हुआ। महाराज लोकसिंह के यहाँ एक बड़ा ही चतुर ऐन्द्रजालिक आया था। उसका खेल होनेवाला था। महाराज ने इन आश्चर्य्यजनक खेलों को देखने के लिए ही भानुकुमार और प्रतापकुमार को बुला भेजा था। राजा का निमन्त्रण पाकर दोनों ही ऐन्द्रजालिक का खेल देखने गये।

इधर चन्द्रकला जब वाटिका से अपने शयनागार में गई तो वहाँ उसकी भी दशा बड़ी शोचनीय हो गई। उसकी सखियाँ उसको बहुत कुछ समझाती-बुझाती थीं, परन्तु उसे धैर्य्य न होता था। निश्चित समय पर जब ऐन्द्रजालिक के खेल आरम्भ हुए तो वहाँ राजकुमारी भी गई और भानुकुमार को देखकर उसके प्रेमपाश में आबद्ध हो गई। खेल समाप्त होने पर राजकुमार तो अपने शिविर को चले गये; परन्तु चन्द्रकला जब अपने विश्रामागार को गई तो मानों वहाँ से विरह-व्यथा अपने साथ ही लेता गई। इसी समय उसे सुदेवी के द्वारा ज्ञात हुआ कि राजकुमार उसके ऊपर अनुरक्त हैं। इस समय चन्द्रावली के अधिक अनुरोध करने से चन्द्रकला ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैंने स्वप्न-दर्शन में भानुकुमार के साथ अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। इतने ही में सुदेवी ने वही प्रेमपत्र लाकर राजकुमारी को अर्पण किया। इसमें पाँच चरणों का एक सुन्दर सवैया लिखा था। चन्द्रकला

को उसे पढ़कर बड़ा आनन्द हुआ। सखियों ने भी उसके भाग्य की प्रशंसा की, पर मालती को इस बात का पता था कि चन्द्रकला का यह आनन्द क्षणिक है, स्थायी नहीं; क्योंकि इस समय तक प्रतापकुमार और भानुकुमार कञ्चनपुर से प्रस्थान करके लगभग दो कोस की दूरी पर निकल गये होंगे।

मालती का अनुमान भी ठीक था। मार्ग में राजकुमार अभी अपने शिविर में विश्राम ही कर रहे थे कि सहसा एक व्यक्ति एक पत्र लेकर आया। यह व्यक्ति हमारी पूर्वपरिचित चन्द्रकला की सखी कालिन्दी थी और पुरुष के वेष में विरह-विधुरा राजकुमारी का प्रेम-सन्देश और चित्र लेकर भानुकुमार के पास आई थी। इसने चन्द्रकला की सारी विरह-व्यथा कह सुनाई और उनसे प्रार्थना की कि आप राजकुमारी को आकर दर्शन दें। भानुकुमार ने उसके उत्तर में उसे सूचित किया कि मंगलेश्वर के मेले में मैं अवश्य आऊँगा। चार महीने आप धैर्य्य धरें। कालिन्दी यह पत्र लेकर कञ्चनपुर चली गई और भानुकुमार विजयनगर को चले आये।

भानुकुमार को विजयनगर आये कई महीने बीत गये। इस बीच में पारावतों के द्वारा उभय प्रेमियों में प्रीतिपत्र-व्यवहार होता रहता था। धीरे-धीरे कार्तिक का महीना आया और मंगलेश्वर की यात्रा के लिए दैवज्ञों से मुहूर्त पूछा गया, परन्तु दोनों बार छींक हुई। इससे अनिष्ट की आशंका से उनका उत्साह कुछ मन्द पड़ गया, परन्तु प्रेमाधिक्य से उत्साहित होकर उन्होंने

इस पर कुछ ध्यान न दिया। अमङ्गल की सूचना देते हुए वाम बाहु भी फड़क उठा; परन्तु इस ओर भी उनका ध्यान न गया। अन्त में वे बारह दिन के मार्ग को छः दिन में ही समाप्त करने के विचार से सहसा कंचनपुर उतर पड़े।

कञ्चनपुर के मार्ग में एक भयङ्कर वन पड़ता था। ज्योंही ये लोग इस वन में पहुँचे त्योंही भयङ्कर शब्द सुनाई पड़ने लगे। किसी ने कहा—"लौट जाओ।" परन्तु ये उत्साही राजकुमार भला कब पीछे लौटनेवाले थे, आगे बढ़ते ही गये। बिजलियाँ तड़पीं, सिंहनाद हुए, परन्तु उनका उत्साह किसी प्रकार मन्द न हुआ। बार-बार यात्रा-निषेध सुनते-सुनते प्रतापकुमार को क्रोध आ गया। उसने कड़ककर कहा कि कोई शक्ति हमको लौटा नहीं सकती और जिसमें हमें लौटाने का साहस हो वह सामने आकर कहे। तत्काल अन्धकार में ही दो भयङ्कराकार मूर्तियाँ दिखलाई पड़ीं। प्रतापकुमार और भानुकुमार ने उन पर अस्त्राघात किये। उनके खड्ग पाषाण पर टकराने से टूट गये और फिर वन में घोर सन्नाटा छा गया। तब तो इन्होंने विचारा कि यह कोई प्रेत-बाधा है। इसलिए उसके निवारणार्थ ये लोग मन्त्रोच्चारण करने लगे। इतने ही में आकाशवाणी हुई कि हे राजकुमार, इस अभिशप्त वन से लौट जाओ परन्तु मार्ग में व्याघ्रों से बचे रहना।

अभी ये लोग कुछ ही आगे बढ़े थे कि सहसा दो सिंह इन दोनों पर झपट पड़े। इनके खड्ग तो पहले ही टूट चुके थे;

इसलिए भानुकुमार ने भाला सँभाला और प्रतापकुमार ने कटार ली। प्रतापकुमार ने कटार के एक ही प्रहार से एक सिंह का अन्त कर डाला और शीघ्रता-पूर्वक दूसरे व्याघ्र की ओर झपटा जो भानुकुमार को दबाये हुए था।

इस अभिशप्त वन का एक विचित्र इतिहास था। जैसा भयंकर यह आजकल है वैसा पहले न था; प्रत्युत योगियों की सिद्ध-भूमि होने के कारण यह अत्यन्त रमणीय था। कालान्तर में नागासुर नामी महाबली दैत्य का ध्यान इसकी ओर गया और उसने इसे अपना विहारोद्यान बनाने के विचार से हस्तगत करना चाहा। अपने इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए वह यहाँ के निवासी तपस्वियों पर मनमाना अत्याचार करने लगा।

मुनिमण्डली की तपश्चर्या में इस प्रकार विघ्न देखकर समीपवर्ती राज्यों के अधिपतियों ने उससे युद्ध करने का विचार किया, परन्तु श्री अनन्त मुनिराज ने भयंकर जन-संहार को बचाने के विचार से वहाँ का निवास छोड़कर हेमगिरि पर्वत का आश्रय ग्रहण किया और जाते समय शाप देते गये कि आज से यह वन अपना समग्र रमणीयता का परित्याग करके घोर नरक का रूप धारण करेगा और यहाँ पर हिंसक पशुओं एवं पशु प्रवृत्तिवाले व्यक्तियों का निवास होगा। यहाँ आनेवाला व्यक्ति कई बार विक्षिप्त के समान चेष्टाएँ करेगा। इस शाप के परिणाम-स्वरूप वह वन उसी समय से भूत-प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी आदि का स्थायी निवास बन गया और जब प्रतापकुमार और भानु-

कुमार इस वन से होकर निकले तो वे भी विक्षिप्त के समान चेष्टा करने लगे।

इधर चन्द्रकला की दशा अत्यन्त दयनीय हो रही थी। विरह-व्यथा ने उसे दग्ध कर रक्खा था। सखियों का शीतलोपचार कुछ काम न देता था। सखियाँ उसे जितना ही धैर्य धराने का प्रयत्न करती थीं, उतना ही उसका विरह-ताप बढ़ता जाता था। इसी विरह-अवस्था में चन्द्रकला ने रुधिरक्लान्त भानुकुमार को चिता में भस्म होते देखा। फिर क्या था, उसने भी अपने प्राणोत्सर्ग करने का पूरा संकल्प कर लिया। थोड़ी देर में उसने अनन्त मुनिराज का स्मरण किया और इसका उसे तत्काल प्रत्यक्ष फल मिला।

चन्द्रकला ने ज्योंही नेत्र खोले त्योंही उसे एक मृगशावक दिखलाई पड़ा। यह उसे इतना प्यारा लगा कि वह इसके पकड़ने के लिए दौड़ी और इसका पीछा करते-करते पलमात्र में अनन्त मुनिराज के आश्रम में आ गई। यहाँ आते ही उसको कुछ सान्त्वना मिली। थोड़ी देर में उसे एक तपस्विनी दिखलाई पड़ी। तपस्विनी को देखकर उसे और भी धैर्य्य हुआ। उसका परिचय पाकर तपस्विनी ने कहा 'और चाहे जो कुछ करना; परन्तु भानुकुमार से वार्तालाप करने का विचार न करना।' मुनि के प्रसाद-स्वरूप इसी वन में भानुकुमार चन्द्रकला को दिखलाई पड़े और उनका सेवक धीरज भी दिखलाई पड़ा। उसे प्रतापकुमार ने वहीं घोड़े लाने की आज्ञा दी। जब चन्द्रकला ने यह आज्ञा सुनी तो उसके ऊपर अनभ्र वज्रपात हुआ।

इतनी ही देर में भानुकुमार के ऊपर शापवश उन्माद का प्रभाव हुआ और वे विक्षिप्त के समान इधर-उधर घूमने और प्रलाप करने लगे। यह देखकर चन्द्रकला का हृदय बहुत दग्ध हुआ; क्योंकि वह जानती थी कि इस उन्माद का कारण उसका प्रेम ही है। इस विचार से प्रेरित होकर तपस्विनी के निषेध करने पर भी वह भानुकुमार के पास गई। इधर भानुकुमार ने जाना कि यह अवश्य कोई पिशाचिनी है और मुझे खाने के लिए आई है। इस विचार से वे बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगे। चन्द्रकला ने जाना कि यह सब मेरे दुर्भाग्य का फल है। इसलिए वह वहीं पाषाण पर सिर पटककर प्राण-परित्याग करनेवाली ही थी कि तपस्विनी ने उसे रोका। परन्तु वह दु:खावेग के कारण वहीं मूर्च्छित हो गई। इधर प्रतापकुमार और भानुकुमार मुनि के आशीर्वाद से उस अभिशप्त वन की विघ्न-बाधाओं से मुक्त होकर अन्त में निश्चित समय से दो-तीन दिन बाद मङ्गलेश्वर के मेले में कञ्चनपुर जा पहुँचे। उधर मुनिवर के आशीर्वाद से चन्द्रकला भी यथासमय राजमन्दिर में जा पहुँची और जाकर अपनी शय्या पर सो रही। उसको भी इस घटना की वास्तविकता का पता न लगा।

इस मेले में महाराज लोकसिंह का प्रबन्ध था और यह प्रबन्ध इन्द्रबली नाम के एक धूर्त सभासद के हाथ में था। यह इन्द्रबली किसी समय अमरावती के राजा महिपालसिंह के दरबार में था। उस समय चन्द्रकला के विवाह की बातचीत इन्हीं महाराज के साथ

हुई थी। महिपालसिंह के भाई का नाम दिग्पालसिंह था। यह बड़ा ही इन्द्रियलोलुप था। इसलिए इस पर इन्द्रबली का जादू चल गया था। इन्द्रबली ने इसे अपने हाथ में करके जब प्रजा पर अत्याचार करना आरम्भ किया तब महिपालसिंह ने इसे अमरावती से निकाल दिया। धूर्त तो यह पूरा था ही, साथ ही राजदरबार के हथकण्डे भी ख़ूब जानता था। अमरावती से निकाले जाने के बाद यह कञ्चनपुर चला आया और थोड़े ही दिनों में यह यहाँ महाराज लोकसिंह का स्नेहपात्र बन गया। अधिकारारूढ़ होते ही इसने यहाँ भी अत्याचार करना आरम्भ किया। महाराज लोकसिंह बड़े ही अनुभवी पुरुष थे। इसकी चाल को समझ गये और थोड़े ही दिनों में उन्होंने इसे निकाल दिया।

कञ्चनपुर से निकाले जाने के बाद यह फिर अमरावती चला आया; क्योंकि महाराज महिपालसिंह का देहान्त हो चुका था और राज्यसूत्र-संचालन का भार उनके कनिष्ठ भ्राता दिग्पाल के हाथ था, जिनका यह अभिन्नहृदय मित्र रह चुका था। भानुकुमार से यह बहुत जलता था; क्योंकि उन्होंने महाराज महिपालसिंह से कहा था कि जब तक यह दुरात्मा राज्य से न निकाला जायगा, तब तक प्रजा का कल्याण न होगा। प्रतापकुमार का सत्परामर्श मानकर महाराज महिपालसिंह ने इसे निकाल दिया था। इससे दो लाभ हुए—एक तो दिग्पालसिंह की कुसंगति छूट गई और दूसरे प्रजा पर नैतिक अत्याचार भी बन्द हो गया।

मेले में आकर यह भानुकुमार से अपना बदला लेने को तैयार हुआ। यहीं इसे सुखनन्दन के द्वारा चन्द्रकला और भानुकुमार के प्रेम-सम्बन्ध का पता चला। दुष्टों को भला ऐसे प्रसङ्ग में विघ्न डाले बिना कैसे चैन पड़ती। इसने तुरन्त ही यह निश्चय किया कि जैसे हो सके, वैसे इस सम्बन्ध में विघ्न डाला जाय। तुरन्त ही इसने अपना कार्यक्रम निश्चित कर लिया और मेले में जाकर इसने दिग्पाल से कहा कि देखो चन्द्रकला का विवाह तुम्हारे बड़े भाई से ठीक हुआ था। वे अब नहीं हैं, तुम उनके उत्तराधिकारी हुए हो, इसलिए उसका विवाह भी तुम्हारे साथ होना चाहिए। यह कहकर उसने चन्द्रकला का वह चित्र भी उसे दिखलाया जो मेले में भानुकुमार के जेब से गिर पड़ा था। इस चित्र को देखकर उसकी स्मराग्नि और भी तीव्र हो गई और वह चन्द्रकला को प्राप्त करने का उपाय करने लगा।

पाठकों को स्मरण होगा कि अनन्त मुनि के आशीर्वाद से चन्द्रकला राजभवन में आकर शय्या पर सो गई थी। इसने स्वप्न में भानुकुमार को देखा कि वे इसका मानमोचन कर रहे हैं। इसी समय उसे सखियाँ जगाने लगीं। वह उन्हें भानुकुमार समझकर और भी मान करने लगी। इस पर सखियों ने जल छिड़ककर उसे सचेत किया और कहा कि भानुकुमार मेले में आये हैं और उन्हें उद्यानपाल सुखनन्दन ने स्वयं देखा है। वे आज रात को अवश्य इस वाटिका में आवेंगे; क्योंकि आपने कालिन्दी के द्वारा जो पत्र उनके पास भेजा था, उसमें आज रात को मिलने का समय निश्चित कर दिया था।

पूर्व निश्चय के अनुसार भानुकुमार उसी वाटिका में जा पहुँचे। चन्द्रकला उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने भानुकुमार का बड़ा स्वागत किया। कालिन्दी ने इनका चित्र खींचा। दोनों में बहुत देर तक प्रेम-प्रसङ्ग चलता रहा। अन्त में भानुकुमार ने शपथ-पूर्वक उसे अपनी स्त्री बनाने की प्रतिज्ञा की और उसे धैर्य्य बँधाकर विजयनगर लौट आये। प्रतापकुमार भी उनके साथ लौटा।

भानुकुमार अपने राजप्रासाद में बैठे हुए कुछ सोच ही रहे थे कि धीरज ने उन्हें एक पत्र लाकर दिया। इस पत्र का वाहक एक पारावत था। इसके द्वारा उन्हें पता चला कि चन्द्रकला का स्वयंवर पूर्व-निश्चय के अनुसार फाल्गुन में न होगा। इसी समय एक और पारावत भी पत्र लेकर आया। उसमें स्वयंवर के बढ़ जाने का कारण स्पष्ट शब्दों में लिखा था। यह सब इन्द्रबली की धूर्तता के कारण हुआ था। उसने दिग्पाल से आकर कहा कि चन्द्रकला जैसे स्त्रीरत्न को हस्तगत करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। दिग्पाल ने भी उसकी बातों में आकर कञ्चन-पुराधीश महाराज लोकसिंह को लिख भेजा कि अब चन्द्रकला का विवाह मेरे साथ किया जाय, अन्यथा मैं तुम्हारा राज्य नष्ट कर दूँगा।

यह समाचार जब कञ्चनपुर पहुँचा तब महाराज लोकसिंह को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने इन्द्रबली को पकड़ने के लिए अपने सैनिक भेजे। इन्द्रबली भाग गया और दुर्गम मार्गों में होता हुआ रामधारा को फाँदकर अमरावती की राज्यसीमा में जा पहुँचा।

सैनिकों ने महाराज के आदेश के बिना अन्य राज्य में प्रवेश करना उचित न समझा और लौटकर महाराज लोकसिंह को सारा हाल कह सुनाया। दिग्पाल की प्रचारणा सुनकर महाराज लोकसिंह ने क्षत्रियोचित दर्प के साथ अमरावती का अवरोध करने के लिए अपनी सेना को आज्ञा दी।

विजयनगर को जब रण-निमन्त्रण दिया गया तब प्रतापकुमार और भानुकुमार दोनों ही, महाराज अमरसिंह की आज्ञा लेकर, कञ्चनपुराधीश की सहायता के लिए चल पड़े। इधर जब से चन्द्रकला को अमरावती-अवरोध का पता लगा था तब से वह अपार चिन्ता में पड़ी थी। कारण यह था कि वह अपने पिता और भावी पति के दुःख का कारण अपने ही को समझती थी और उनकी कुशल के लिए नित्यप्रति जगदीश से प्रार्थना करती रहती थी। एक रात्रि उसने स्वप्न में अपनी विजय देखी, जिससे उसे अपार आनन्द हुआ और ऐसा होना भी स्वाभाविक था। न जाने कितनी आपत्तियों को झेलकर कहीं यह सुख-स्वप्न देखने में आया था; फिर भला चन्द्रकला को अपार आनन्द क्यों न होता।

विजयनगर और कञ्चनपुर की सम्मिलित सेनाओं ने अमरावती-अवरोध में लोकोत्तर शौर्य्य प्रदर्शित किया। विशेषतः प्रतापकुमार और भानुकुमार की तलवारों ने शत्रु-सेना में प्रलयकाण्ड उपस्थित कर दिया। दिग्पाल तो युद्धारम्भ होते ही वन में भाग गया था। केवल चन्द्रबली भग्नहृदय वीरों को संचालित कर रहा था।

जब इन्द्रबली को दिग्पाल के भागने का पता लगा तो वह वन में उसे ढूँढ़ने गया और उसे विवश संग्राम-भूमि में लाया।

तब तक भानुकुमार और प्रतापकुमार वहाँ जा पहुँचे। उन्हें देखकर इन्द्रबली का क्रोध-कृशानु प्रज्वलित हो उठा और उसने महाराज लोकसिंह, अमरसिंह आदि को अपशब्द कहते हुए भानुकुमार को युद्ध के लिए ललकारा। भला वीरवर प्रताप-कुमार में इस प्रचारण को सहन कर लेने की शक्ति कहाँ थी। फलतः वे करवाल खींचकर इन्द्रबली से जा भिड़े और पलमात्र में उसे धराशायी कर दिया। इसी हुल्लड़ में किसी ने दिग्पाल को मार डाला। विजयी सैनिक महाराज अमरसिंह और लोक-सिंह का जयघोष बड़े उच्च स्वर से करने लगे। लोकसिंह की आज्ञा से अमरावती की लूट-मार बन्द कर दी गई और भानुकुमार विजयनगर को लौट आये। महाराज लोकसिंह भी अपने राज्य कञ्चनपुर को चले गये।

धीरे-धीरे फाल्गुनी पूर्णिमा आ गई। वही चन्द्रकला का स्वयंवर-दिवस था। उसमें सम्मिलित होने के लिए प्रतापकुमार और भानुकुमार दोनों ही गये। आज कञ्चनपुर का सौन्दर्य्य अपूर्व था। वहाँ चन्द्रकला के स्वयंवर में बहुत-से राजा आये थे। यथासमय स्वयंवर-भवन में राजकुमार आ गये। उनका समुचित स्वागत किया गया। राजसभा का अपूर्व समारोह था। यथासमय श्री अनन्त मुनीश्वर भी वहाँ आ गये। राज-चारण स्वयंवरागत राजाओं का परिचय कराने लगे। चन्द्रकला

अपनी सखी के साथ स्वयंवर-भवन में आई और उसने भानुकुमार के गले में जयमाला डाल दी। इस प्रकार चन्द्रकला और भानुकुमार का विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। अनन्त मुनि ने राज-दम्पती को आशीर्वाद दिया।

यह चन्द्रकला भानुकुमार नाटक का संक्षिप्त कथानक है। यद्यपि यह नाटक प्राचीन नाटककारों की बतलाई हुई कसौटी पर कसने से सर्वथा खरा नहीं उतरता, तो भी इसमें कुछ निजी विशेषताएँ हैं। इसका कारण यह न समझना चाहिए कि 'पूर्ण' जी ने प्राचीन रीतिकारों के अनुशासन की अवहेलना करने के लिए ऐसा लिखा है, प्रत्युत उन्होंने अभिनेय नाटकों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर और लोकरुचि का अध्ययन करके ऐसा किया है, अन्यथा रङ्गमञ्च पर युद्ध और दिग्पाल एवं चन्द्रबली का वध दिखाने की कौन-सी आवश्यकता पड़ी थी।

यह नाटक 'पूर्ण'जी ने कदाचित् साहित्यानुरागियों के लिए लिखा है, जैसा कि इसकी भाषा और कविता से सिद्ध होता है। इसके प्रसंगों में ऐसे ललित श्लेष और रूपक बाँधे गये हैं और साथ ही साथ दाम्पत्य-परिहास भी इतना कवित्वपूर्ण है कि इसका आनन्द साहित्यानुरागी ही ले सकते हैं, सारे दर्शक नहीं। इस नाटक की सारी स्त्रियाँ शिक्षिता हैं; शिक्षिता ही नहीं काव्य-मर्मज्ञा भी हैं। मालती की कविता में अपूर्व लालित्य है। कालिन्दी कुशल चित्रकार है। चन्द्रावली का व्यंग बड़ा ही चुभता होता है। सुदेवी तक को काव्य के रहस्य का कुछ-कुछ ज्ञान है।

'पूर्ण' जी ने नाटक में शिक्षित स्त्रियों का समावेश करके जहाँ काव्य-सौन्दर्य्य का संवर्धन किया वहाँ यह बात भुला दी कि वर्णन में अस्वाभाविकता आ रही है। वे चाहते तो अशिक्षित स्त्री-पात्रों को भी नाटक में स्थान दे सकते थे और उनका चरित्र-विकास दिखलाकर नाटक में वैसा ही सौन्दर्य्य ला सकते थे।

प्रस्तुत नाटक में जितनी काव्योचित सामग्री है, उतनी नाटकोचित सामग्री नहीं है। नाटकारम्भ में वर्षाऋतु का बड़ा ही मनोरम वर्णन है, पर यह आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया है। संस्कृत नाटकों की शैली के अनुसार इसमें भाषाभेद भी है। उत्तम पात्रों का सम्भाषण खड़ी बोली में है और हीन पात्रों का वार्तालाप कानपुर के निकट बोली जानेवाली ग्रामीण भाषा में। भँगेड़ियों के वार्तालाप में हास्य की पुट के साथ-साथ विनोद भी है। नदुआ और सुखनन्दन में भी ऐसा ही स्वारस्य है।

नाटकों में चरित्र-चित्रण का एक विशेष स्थान होता है। 'पूर्ण' जी पात्रों के चरित्र-चित्रण में सफल नहीं हो सके। भानुकुमार और प्रतापकुमार के चरित्र-चित्रण में कोई उल्लेखनीय अन्तर परिलक्षित नहीं होता और न कोई अन्तर चन्द्रकला तथा चन्द्रावली के चरित-चित्रण ही में दिखलाई पड़ता है। हमें तो इसके दो-एक गर्भाङ्क भी 'पूर्ण'जी के व्यर्थ परिश्रम के परिचायक दिखलाई पड़ते हैं। यदि युद्ध के अनन्तर संग्राम-भूमि का भयानक दृश्य न दिखलाया जाता तो भी नाटकीय प्रबन्ध की कोई हानि न होती।

इस नाटक में 'पूर्ण' जी ने प्राचीन काल का आदर्श प्रतिबिम्बित किया है। परन्तु साथ ही साथ आपने पदार्थ-विद्या के सिद्धान्तों की भी दुहाई दी है। इस प्रकार दो विरोधी भावों को एक साथ दिखलाकर उन्होंने प्रकारान्तर से ऐतिहासिक व्याघात का उदाहरण सङ्कलित किया है।

'पूर्ण' जी योगसिद्धि के प्रबल समर्थक थे। इसलिए इसके चमत्कार दिखलाने का भी उन्होंने पूर्ण प्रयत्न किया है। विरह-विधुरा चन्द्रकला के सामने एक कुरङ्ग-शावक आता है और वह उसके पीछे दौड़ी जाती है। भाग्यवश वह अनन्त मुनि के आश्रम पर जा पहुँचती है। इस दृश्य का चित्र अङ्कित करते समय 'पूर्ण' जी को रामचरितमानस का भानुप्रतापवाला प्रसङ्ग अवश्य याद आया होगा। परन्तु राजनन्दिनी का सखियों को छोड़कर वन में चला जाना और वहाँ से दो दिन के बाद लौटने पर भी उसकी सखियों को भी इस बात का पता न चलना एक ऐसी घटना है जिसमें अस्वाभाविकता का अभाव नहीं है।

साहित्य की दृष्टि से इसके वर्णन एक से एक अच्छे हैं। प्रकृति-निरीक्षण भी इसमें उत्कृष्ट है। संयोग और विप्रलम्भ दोनों ही प्रकार के शृंगारों की छटा दर्शनीय है। राजदरबारों में हम मुनियों और साहित्य-सेवियों की प्रतिष्ठा देखते हैं, शाप और आकाशवाणी नाटक के बिगड़ते हुए प्रसङ्ग को सुधारती हैं। पारावत सन्देश-वाहक का काम करते हैं। काननों में राक्षसों का निवास है। शाप में अब भी उतनी ही तीव्रता है।

धाराधर-धावन

यह कविकुलकुमुद-कलाधर कालिदास के मेघदूत का पद्यात्मक अनुवाद है। यह ब्रजभाषा में है। इसमें राय साहब ने घनाक्षरियों का प्रयोग किया है जिनके लिखने में वे बड़े कुशल थे। यह दो भागों में विभक्त है—१ पूर्वमेघ और २ उत्तरमेघ। पूर्वमेघ में कुछ तो नरेन्द्र छन्द हैं और कुछ हरिगीतिका। नरेन्द्र छन्द बड़ी सुगमतापूर्वक वर्षाऋतु के रागों में गाया जा सकता है। मेघदूत में वर्षाऋतु का वर्णन अधिक है, इसलिए राय साहब ने बड़ी कुशलता के साथ इसके वर्णन के लिए नरेन्द्र छन्द का निर्वाचन किया है। उत्तरमेघ का अधिकांश घनाक्षरियों में है और शेष भाग स्रग्धरा वृत्तों में है जो प्रसङ्गानुकूल करुण रस के सर्वथा उपयुक्त है।

मेघदूत खण्डकाव्य है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथजी इस बात के समर्थक हैं; परन्तु आचार्यप्रवर दण्डी तो इसको महाकाव्य मानने को तैयार हैं। इसका कारण यह है कि यह अपूर्व रसाप्लावित एवं लोकोत्तर आह्लादप्रदायिनी रचना है। सरसता तो इसमें इतनी है कि अच्छे-अच्छे महाकाव्य भी इससे टक्कर नहीं ले सकते। इसके साहित्य-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर श्रीमद्गोवर्द्धनाचार्य ने कालिदास की प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा था—

'साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतिलीलाकालिदासोक्तिः॥"

(आर्यासप्तशती)

यह पहला सन्देश काव्य है। फिर तो इसके आधार पर पन्द्रह दूत-काव्य संस्कृत में बने और इसी प्रकार कई काव्य हिन्दी में बने। परन्तु विप्रलम्भ शृङ्गार के वर्णन की जैसी सुन्दर छटा कालिदास के काव्य में देखने में आती है, वैसी अन्य रचनाओं में नहीं।

कुछ कवियों को तो इसकी रचना इतनी प्रिय प्रतीत हुई कि उन्होंने इसके श्लोकों के प्रत्येक चरण पर एक-एक छन्द बना करके नया काव्य ही लिख डाला। इनमें से एक तो जिनसेनाचार्य्य हैं जिन्होंने सन् ७३५ में मेघदूत के श्लोकों के चरणों पर अपने छन्द निर्माण करके पार्श्वाभ्युदय नाम का काव्य ही लिख डाला। पाठकों के मनोविनोदार्थ हम उसका एक श्लोक यहाँ उद्धृत करते हैं।

श्रीमन्मूर्त्या मरकतमयस्तम्भलक्ष्मीं वहन्त्या
योगैकाग्र्यस्तिमिततरया तस्थिवान्सन्निदध्यौ।
पार्श्वं दैत्यो नभसि विहरन् बद्धवैरेण दग्धः
कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः॥

ऐसा ही एक प्रयास संगण के पुत्र विक्रम कवि ने किया था। इन्होंने अपनी रचना का नाम नेमदूत रक्खा था। इसका भी एक छन्द देख लीजिए।

'प्राणित्राणप्रवणहृदयो बन्धुवर्गं समग्रम्
हित्वा भोगान् सह परिजनैरुग्रसेनात्मजां च।
श्रीमन्नेमिर्विषयविमुखो मोक्षकामश्चकार
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु॥

मेघदूत का सम्मान केवल भारत ही में नहीं है, पाश्चात्य विद्वान् भी इसे बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। महामना मौनफ्रैंच, डाक्टर एच० एच० विल्सन्, मिस्टर गील्ड, मिस्टर जे० ए० जेकब और मिस्टर हूल्ज आदि महानुभावों ने मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा की है जिसके कारण आज योरप में कालिदास और मेघदूत दोनों का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। प्रोफ़ेसर मैक्समूलर महोदय तो इसके काव्य-सौन्दर्य्य पर मुग्ध थे।

मेघदूत पर आज भी लगभग चालीस संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हैं। इससे पहले और भी न जाने कितनी हुई होंगी, जो आज कराल काल की कुचाल से देखने में नहीं आतीं। वास्तव में मेघदूत ऐसा ही सुन्दर काव्य है, जिसकी मनोहारिता पर मुग्ध होकर पण्डितों ने इस पर टीकाएँ लिखने का इतना प्रयास किया। इतनी टीकाएँ कदाचित् बिहारी सतसई को छोड़कर और किसी ग्रन्थ की नहीं हुई हैं।

हिन्दी में भी मेघदूत के कई अनुवाद हैं। इनमें से कुछ व्रज-भाषा में हैं और कुछ खड़ी बोली में; कुछ समश्लोकी हैं और कुछ अन्य वृत्तों में। सबसे पहले मेघदूत का अनुवाद लाला सीतारामजी ने किया। इसमें अवधी की पुट है, यद्यपि छन्द घनाक्षरी है। लाला जी की यह पहली रचना थी। इसलिए इसमें उन्हें उतनी ही सफलता प्राप्त हुई थी, जितनी कि किसी कवि को अपने प्रथम प्रयास में प्राप्त होनी चाहिए। इसके बाद मेघदूत का दूसरा अनुवाद राजा लक्ष्मणसिंह ने किया। यह व्रजभाषा में है। यों तो इसमें

राजा साहब ने कई छन्द लिखे हैं, पर इसके सवैये और शिखरिणी अत्यन्त सुन्दर हैं। यह बात और है कि इसमें कहीं-कहीं कालिदास का भाव पूर्ण रूप से नहीं आ पाया है; पर इसमें सरसता का अभाव नहीं, व्रजभाषा में होने के कारण इसमें माधुर्य्य अधिक आ गया है।

तीसरा अनुवाद पण्डित केशवप्रसादजी मिश्र का है। यह खड़ी बोली में है। कालिदास के भाव की रक्षा करने में अनुवादक को सफलता तो प्राप्त हुई है, पर जैसी सरसता चाहिए वैसी नहीं आ पाई। चौथा अनुवाद सेठ कन्हैयालाल पोद्दारजी का है। यह समश्लोकी है और खड़ी बोली में है। इसमें पोद्दारजी ने कालिदास के श्लोक के भाव का यथासाध्य निर्वाह करने की चेष्टा की है; पर इसमें यथेष्ट स्वारस्य का कुछ अभाव सा है। वास्तविक बात तो यह है कि संस्कृत की समास-पद्धति के कारण उसका भाषान्तर करते समय उतने ही अक्षरों में उतना भाव कह देना कठिन समस्या है। समश्लोकी अनुवादकों को जो असफलता हुई है, उसका कारण यही है। इसमें बड़ी सुन्दर टीका है और एक सौ दस पृष्ठ की मार्मिक भूमिका लगी हुई है, जिससे ग्रन्थ की उपयोगिता न जाने कितनी बढ़ गई है। सैकड़ों ग्रन्थों का हवाला देकर पोद्दारजी ने इसका सम्पादन किया है। मेघदूत का ऐसा सुन्दर संस्करण देखने में नहीं आया। इसमें अलंकारों का सुन्दर निरूपण किया गया है।

पाँचवाँ अनुवाद राय देवीप्रसादजी का है। इसका नाम धाराधर-धावन है। नामकरण ही में कवित्व का आभास मिलता है।

यह भाषा के प्रचलित छन्दों में लिखा गया है, जिनका निर्वाचन सर्वथा रसानुकूल है और वृत्ति और गुण के मनोहर सामञ्जस्य से इसमें अपूर्व मनोहरता आ गई है। कविता में तो प्रसन्न गम्भीरतोया जाह्नवी का सा प्रवाह है। पूर्वमेघ के छन्दों की संगीतात्मकता इसकी दूसरी विशेषता है। कई छन्दों में तो 'पूर्ण'जी ने कालिदास से सफलतापूर्वक स्पर्धा की है।

उदाहरण के लिए यहाँ पर एक छन्द लिख देना पर्याप्त होगा। पाठक स्वयं देख लें कि इसमें राय साहब ने कितनी सफलता पाई है—

तस्मिन् काले जलद ! यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व ।
माभूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचित्
सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥

—कालिदास

इसका अनुवाद देखिए—

बिनती इती है सखा भौन मों पहुँचि मेरे,
मेरी प्रिय प्रेमिनी को जागती जु पावै ना।
तौ तू तासु पीछे अवसेर इक जाम कीजै,
नेकहू गरज को सबद तू सुनावै ना ॥
स्वप्न में मिलति ह्वै है मोसों मनमोहिनी,
सो तेरो सोर ताकी सुख-नींद उचटावै ना।

कहूँ छिन माहिँ मेरे कण्ठ ते सरकि हाय,
मंजु भुज-बेलिन की ग्रन्थि छूटि जावै ना ॥
—'पूर्ण'

छठा अनुवाद पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी का है। यह भी खड़ी बोली में और समश्लोकी है। यह हमें पोद्दारजी के अनुवाद से अच्छा मालूम होता है। कदाचित् यही मेघदूत का पहला समश्लोकी अनुवाद था। सातवाँ अनुवाद आगरा निवासी पण्डित ऋषिकेश चतुर्वेदी का है। यह समश्लोकी है और ब्रजभाषा में है। इसमें जो कुछ स्वारस्य दिखलाई पड़ता है उसका श्रेय ब्रजभाषा की रचना को है। चतुर्वेदीजी का उद्योग सराहनीय है। बड़ी बात तो यह है कि इस रचना में कहीं छन्दोभङ्ग देखने में नहीं आता। आठवाँ अनुवाद कानपुर-निवासी श्री रमाशङ्करजी कमलेश का है। यह ब्रजभाषा में है और इसके कतिपय छन्द बड़े ही मनोहर हैं। अभी तक इसको छपने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सका।

इसके अतिरिक्त अँगरेज़ी में मेघदूत के कई अनुवाद हैं। इनमें क्लाउड मैसिंजर और मैसिंजर क्लाउड नाम के दो अनुवाद बड़े ही सुन्दर हैं। इतना ही नहीं, भारत के सर्वश्रेष्ठ आधुनिक कवि श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री राजेन्द्रलाल देव और अरविन्द घोष आदि दिग्गज विद्वानों ने मेघदूत की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। पूर्व मेघ में विरही यक्ष ने अपनी प्रियतमा के लिए जो सन्देश भेजा है, उसका कोई उल्लेख तो नहीं है; पर रामगिरि से लेकर अलकापुरी तक के वर्षाकालीन मार्ग का सुन्दर निर्देश किया

गया है, जो कालिदास के भौगोलिक परिज्ञान का परिचायक है। उत्तर मेघ में हिमालय के तुषार-मण्डित व्योमस्पर्शी उन्नत शैल पर बसी हुई राजराजेश्वर की राजधानी अलका का वर्णन है। यह वर्णन बड़ा ही उत्कृष्ट है। यक्षों के सुसम्पन्न एवं विलासमय जीवन का इसमें सुन्दर चित्र खींचा गया है। इसी में यक्ष का करुण-पूर्ण सन्देश भी है। इसको 'पूर्ण'जी ने स्रग्धरा वृत्तों में लिखा है जो करुण कथा के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

कालिदास को विप्रलम्भ-शृङ्गार के वर्णन में शाप-प्रवास दिखाने की अधिक अभिरुचि प्रतीत होती है; इसका परिचय उनकी कई रचनाओं में मिलता है। विक्रमोर्वशीय नाटक में ऐसे ही प्रसङ्ग की अवतारणा की गई है। अभिज्ञान-शाकुन्तल में दुर्वासा के शाप की कथा तो सभी को मालूम है। इसी के प्रभाव से दुष्यन्त अपनी प्राणाधिका शकुन्तला को बिल्कुल भूल जाते हैं। मेघदूत में कुबेर के वर्षभोग्य शाप से उनका उद्यानपाल यक्ष अपनी प्रियतमा से वियुक्त होकर दुःखमय जीवन व्यतीत करता है। यही मेघदूत का संक्षिप्त परिचय है। अन्त में हम पं० विष्णु कृष्ण शास्त्री चिपलूणकर के मत का उल्लेख करके इस प्रसंग को समाप्त करते हैं—

"यदि कालिदास के अन्य सब ग्रन्थ उपलब्ध न होके यह एक मेघदूत ही साहित्य-संसार में विद्यमान रहता तो भी यह महाकवियों की गणना में सर्वोपरि माना जाता। इस काव्य के कथा-सूत्र की सामग्री केवल कवि की कल्पना-शक्ति के उदात्त और हृदयङ्गम भाव मात्र है।"

स्वदेशी कुण्डल—यह राय साहब की तृतीय बड़ी रचना है। इसका निर्माण संवत् १९६७ में किया गया था। यद्यपि इसका कलेवर २५ पृष्ठ से अधिक नहीं है और इसकी छन्द-संख्या ५२ मात्र है पर विषय की उपयोगिता की दृष्टि से यह एक सुन्दर रचना है। अब तक राय साहब पद्यरचना ब्रजभाषा में ही किया करते थे, परन्तु इसकी रचना आपने पुराना आग्रह छोड़कर खड़ी बोली में की। इसका कारण तत्कालीन देश और राष्ट्र की परिस्थिति थी। युवकों में तो नवजीवन सञ्चार करने के लिए राय साहब के सुललित उपदेश मन्त्राक्षरों का काम देंगे।

उपदेश बहुधा रोचक नहीं होते। वे हितकर होते हैं और 'भारवि' के पदानुसार हितकर बात कभी मनोहारिणी नहीं होती, फिर अमनोहारी प्रसङ्ग में पाठकों का अनुराग कैसे हो सकता है? पर स्वदेशी कुण्डल के सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं होती। इसकी रचना ऐसी आकर्षक है कि एक बार दो-एक छन्द पढ़कर इसे बिना पूरा किये छोड़ने को जी नहीं मानता। किसी रूक्ष बिषय को इतना मनोहारी बनाना एक सिद्धहस्त कवि का काम है, सब का नहीं।

इसकी रचना के लिए कवि ने कुण्डलिया छन्द का आश्रय लिया है। यह छन्द भी अपना अद्‌भुत निजी आकर्षण रखता है। बाबा दीनदयाल गिरि, गिरधर कविराय और कविवर अमीरअली 'मीर' की कुण्डलियाँ तो प्रसिद्ध हैं ही, राय साहब की कुण्डलियाँ भी काव्य-क्षेत्र-रचना में अपना निजी स्थान रखती हैं। जिन

लोगों को इनकी रचना-शैली में फ़ारसी की गन्ध आती है, उनका शङ्का समाधान करते हुए 'पूर्ण' जी ने स्वयं कहा है कि इन्हें वे सर्व-जनसुलभ बनाने के लिए लिख रहे हैं। इसके द्वारा वे प्रकारान्तर से हिन्दी-उर्दू ऐक्य का सामंजस्य कर रहे हैं। उनका लक्ष्य उस समय जनता की चित्तवृत्ति को स्वदेशी की ओर अधिकाधिक आकर्षित करना था। इसे राय साहब ने प्रयाग की प्रदर्शिनी को चिरस्थायी बनाने के लिए सच्चे स्वदेशानुरागियों के करकमलों में समर्पित किया था।

हम ऊपर कह आये हैं कि स्वदेशी कुण्डल के द्वारा राय साहब ने उत्साही नवयुवकों के हृदय-क्षेत्र में स्वदेशानुराग के भाव जागरित करने का प्रयत्न किया था और इस प्रयत्न में उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई थी। जनता की मोहनिद्रा को उन्होंने भङ्ग करने का उद्योग इस प्रकार किया था—

देशी प्यारे भाइयो ! हे भारत सन्तान !
अपनी माता-भूमि का है कुछ तुमको ध्यान ?
है कुछ तुमको ध्यान ? दशा है उसकी कैसी !
शोभा देती नहीं किसी को निद्रा ऐसी।
वाजिब है हे मित्र ! तुम्हें भी दूरन्देशी;
सुन लो चारों ओर मचा है शोर "स्वदेशी"।

राय साहब आलस्य और निरुद्यम के घोर शत्रु थे। वे सबको पुरुषार्थ का ही उपदेश दिया करते थे। राय साहब ने देश के नवयुवकों को उद्योगी बनने का उपदेश इस प्रकार दिया है—

थाली हो जो सामने भोजन से सम्पन्न;
बिना हिलाये हाथ के जाय न मुख में अन्न।
जाय न मुख में अन्न बिना पुरुषार्थ न कुछ हो,
बिना तजे कुछ स्वार्थ सिद्ध परमार्थ न कुछ हो।
बरसो, गरजो नहीं, धीर की यही प्रणाली;
करो देश का कार्य छोड़कर परसी थाली।

'पूर्ण' जी परोपकार के भी बड़े समर्थक थे। स्वार्थ-परायणता को वे देश-कल्याण के मार्ग में बड़ी भारी बाधा समझते थे। उनका विचार था कि परोपकार ही से देश का भला हो सकता है। इस विचार को 'पूर्ण' जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

तन, मन, धन से देश का करें लोग उपकार;
विद्या, पौरुष, नीति का कर पूरा व्यवहार।
कर पूरा व्यवहार धर्म का काम बनावें;
अग्रगण्य जन विहित प्रथा को चित में लावें।
पृथक् पृथक् निज स्वार्थ भुलावें सच्चेपन से;
देश-लाभ को अधिक जानकर तन, मन, धन से।

इस प्रकार 'पूर्ण' जी अपनी कविता के द्वारा देश, जाति और राष्ट्र की सेवा करने के साथ-साथ साहित्य की सेवा करते थे। उनकी रचनाएँ नवयुवकों के लिए नूतन सन्देश देती थीं और उपदेश का काम करती थीं।

राम-रावण-विरोध—यह भगवान् रामचन्द्र के जीवन को लक्ष्य करके लिखा गया है। कविता का विषय जैसा उसके शीर्षक

से विदित होता है, रामायण से लिया गया है। इसकी रचना राय साहब ने संवत् १९६३ में की थी और यह 'भारतमित्र' के पूजाङ्क में प्रकाशित हुआ था। पत्र में निकलते ही इस मनोहारिणी कविता की धूम मच गई। लोगों ने इसका हार्दिक स्वागत किया। कुछ लोगों ने तो राय साहब से यहाँ तक अनुरोध किया कि इसे पुस्तकाकार छपवा दें। उनका आग्रह मानकर संवत् १९६६ में राय साहब ने इसे पुस्तकाकार छपवाया।

इसमें सारी रचनाएँ राय साहब ही की नहीं हैं; कुछ अन्य कवियों की भी हैं। जब यह 'भारतमित्र' में छपा था, तब इसमें अन्य कवियों की रचनाएँ न थीं। राय साहब ने इनको उस समय इसमें जोड़ा, जब इसे पुस्तकाकार छपवाया। अन्य कवियों की रचनाएँ यद्यपि राय साहब की रचनाओं जैसी सुन्दर नहीं हैं, पर विषय के अनुकूल अवश्य हैं। इसी विचार को सामने रखकर कदाचित् राय साहब ने इन्हें पुस्तक में स्थान दिया है।

राजदर्शन—यह भी राय साहब की एक सुन्दर छोटी सी रचना है और तीन भागों में विभक्त है। इसमें सब मिलाकर ४२ छन्द हैं। इसके अतिरिक्त पाठशाला के बालकों के आनन्द और दरिद्र-भोजन के सम्बन्ध में कुछ अन्य स्फुट छन्द दिये गये हैं। इसकी रचना संवत् १९६८ में हुई थी, जब लन्दनाधीश सम्राट् जार्ज भारत में पधारे थे और ७ दिसम्बर सन् १९११ बृहस्पतिवार को दिल्ली में उनका स्वागत हुआ था। इस कविता में राय साहब ने एक से एक सुन्दर चित्र खींचे हैं और 'ओनोमोटो-

पिया' अलङ्कार का तो इसमें नितान्त मनोरम सन्निवेश किया गया है। पाठकों के मनोविनोदार्थ हम यहाँ पर कुछ छन्द उद्धृत करते हैं। इनके पढ़ने से पाठकों को विदित हो जायगा कि राय साहब की वर्णन-शक्ति कितनी अच्छी थी।

प्रात से अर्द्धरात पर्यन्त लगा रहता था ताँतातोर,
फ़िटन, टाँगे अरु मोटर कार, "टनन" "वों" "चलो बचो" का शोर।
तीर्थ में पर्व-समय जन-वृन्द यथा जुड़ते हैं संख्यातीत,
हुई त्यों भारत-प्रजा-प्रजेन्द्र-सन्धि-सक्रान्ति अनूप प्रतीति ॥ १ ॥
खड़ी थीं सेनाएँ उद्दण्ड जमाये परा, निकट अरु दूर,
पधारे ग्यारा के उपरान्त गवरनर-जनरल-हिन्द हुजूर।
सलामी हुई, हुए सब लोग खड़े, अरु दिये "चियर्स" प्रचण्ड,
साथ में थीं लेडी हार्डिंग मुसाहब, था आतङ्क अखण्ड ॥ २ ॥
सलामी हुई विधान समेत खड़े हो दरबारी समुदाय,
देर तक देते रहे चियर्स, सहित हुर्रे, सङ्कोच बिहाय।
बिराजे राजासन-आसीन राजमण्डप में दोनों व्यक्ति,
इन्द्र इन्द्राणी से विख्यात पराक्रमधारी अतुला शक्ति ॥ ३ ॥
दूसरे मण्डप में फिर भूप गये जो था थोड़ी ही दूर,
वहाँ "प्रोक्लेमेशन" का पाठ हुआ ऊँचे स्वर से भरपूर।
पुनः पहले मण्डप में भूप आ गये निज महिषी के सङ्ग,
सुनाये प्रजा-सुखद वरदान बढ़ी जन-दल में अमित उमङ्ग ॥ ४ ॥

इस प्रकार राजदर्शन में उत्कृष्ट वर्णनों का बाहुल्य है। और इसके अनुकूल ही राय साहब ने खड़ी बोली का आश्रय लिया है।

वसन्त-वियोग—इसकी रचना राय साहब ने संवत् १९६७ में की और इसके सौन्दर्य्य पर मुग्ध होकर पण्डित महावीर-प्रसादजी द्विवेदी ने इसे 'सरस्वती' में स्थान दिया था। संवत् १९६९ में जब श्री ब्रह्मावर्त्त सनातनधर्म महामण्डल की ओर से 'धर्मकुसुमाकर' नाम का पत्र निकलने लगा तो राय साहब ने इसे स्वतन्त्र रूप से पुस्तकाकार छपवाया। यह काव्य खड़ी बोली में है। इसमें प्राकृतिक सौन्दर्य का दिग्दर्शन कराया गया है और त्रिदेव-भक्ति के साथ-साथ कर्तव्य-पालन का भी सुन्दर सन्देश दिया गया है। इसकी भाषा भावों का बराबर साथ देती है। जितनी मात्रा में इसमें शब्द-चमत्कार है, उतना ही अर्थ-चमत्कार भी है। पण्डित कृष्णविहारी मिश्र इसी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर इसे खड़ी बोली की सर्वोत्कृष्ट रचना बतलाते हैं।

इसमें कवि ने उद्यान का रूपक बाँधा है। भारतवर्ष को वाटिका माना है। इसके मुख्य-मुख्य तीर्थों को क्यारियाँ माना है और देवापगा, कालिन्दी, व्यास, झेलम, चिनाब आदि अन्य नदियों को नालियाँ माना है, जो नगाधिराज से निकलकर भारत-रूपी कुसुमित उद्यान को सींचती हैं। विक्रमादित्य पृथ्वीराज आदि सम्राट् इस वाटिका के माली हैं। कवि के विचारानुसार इस वाटिका में वसन्त का बारहों महीने स्थायी निवास रहता है। आगे लिखी पंक्तियों में कवि ने ऋतुपरिवर्तन कैसी सुन्दरता के साथ दिखलाया है।

अरविन्द-वृन्द विशाल, मंजुल मिलिन्द, मराल।
सर स्वच्छ में स्वच्छन्द, जलचरों का आनन्द॥
आकाश निर्मल नीर, सुठि पवन परिमल शील।
है सरद ये छवि-सार, जब लौं पड़ा न तुषार॥
नभ चण्डकर उद्दण्ड, उद्दाम घोर प्रचण्ड।
श्रम-वात-दाहक वात, निर्जल जले जलजात॥
शुभ चन्द मन्द मयूख, वन मध्य रूखे रूख।
ये ग्रीष्म भीष्म-दिगन्त, पावस समय-पर्यन्त॥
फूले फले द्रुम-पुंज, मृदु मंजु वल्ली कुंज।
अलि-वृन्द की गुञ्जार, सुन्दर विहङ्ग-पुकार॥
मारुत सुगन्धित मन्द, प्रिय भानु चन्द अमन्द।
गायन रसायन सङ्ग, रञ्जन प्रमोद प्रसङ्ग॥

ऋतु-वर्णन—ऋतु-वर्णन काव्य का एक विशेष अङ्ग सा हो गया है। संस्कृत और हिन्दी के महाकाव्यों तक में इसे स्थान दिया गया है। कविगणों को कल्पना की उड़ान भरने का अवसर इसी में मिलता है। शृङ्गार रस के उद्दीपन विभाव के रूप में यह कवियों की बड़ी सहायता करता है परन्तु जिस ढङ्ग से प्रकृति-वर्णन हिन्दी-साहित्य में किया गया है वह ढङ्ग पाश्चात्य आलोचकों को पसन्द नहीं। वे तो अपने प्रतिनिधि कवि वर्ड्सवर्थ के समान ही हिन्दी-साहित्य का ऋतु-वर्णन पसन्द करते हैं और इसे अपनी पद्धति के अनुकूल न पाकर पूर्वी साहित्य पर इस बात का आक्षेप करते हैं—इसमें प्रकृति-वर्णन है ही नहीं। उनका

कहना है कि हिन्दी-साहित्य के कवियों का प्रकृति-निरीक्षण का सारा प्रयास कविक्रमागत उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक बाँधने ही तक सीमित है। प्रकृति-निरीक्षण इसमें नाम मात्र का होता है।

कदाचित् इन आलोचकों ने कृष्ण-काव्य का भली भाँति पर्य्यालोचन नहीं किया। यदि इन्होंने ऐसा किया होता तो इन्हें पता लगा होता कि अर्कजा के निकट तमाल-गुल्म-संकुलित हरित भूमि पर कैसे-कैसे हृदयहारी कुञ्ज-कुटीरों का वर्णन आया है। रामायण में ही गोस्वामीजी ने जनक की वाटिका का उल्लेख करते हुए प्रकृति-निरीक्षण का कैसा सुन्दर चित्र अंकित किया है। हमारे विचार से तो वड्सवर्थ की कोई सुन्दरतम रचना ही भले उसकी प्रतियोगिता में उपस्थित की जा सके।

महाकाव्यकार तो प्रकृति पर लिखते ही हैं; क्योंकि अलंकार-शास्त्रियों का अनुशासन मानकर वे ऐसा करने के लिए विवश हैं। मुक्तककार भी विषय के सौन्दर्य्य पर मुग्ध होकर ऐसा करते हैं। हिन्दी में तो षट्ऋतुहजारा ऐसे ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनमें प्रकृति-निरीक्षण का कोष पाया जा सकता है; परन्तु यह प्रकृति-निरीक्षण भारतीय पद्धति पर किया गया है। हिन्दी के कवियों में कविवर सेनापति का प्रकृति-निरीक्षण पाश्चात्य पद्धति का है। पण्डित श्रीधर पाठक ने ऋतुसंहार के अनुवाद से प्रभावित होकर इस विषय पर जो कुछ मौलिक रूप से लिखा है, वह भी अपने ढङ्ग का एक ही है।

हिन्दी-साहित्य में इस प्रकार से प्रकृति-निरीक्षण की दो प्रचलित पद्धतियाँ देखी गई हैं। एक तो वह जिसमें प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन लालित्य एवं माधुर्यपूर्ण पद्यवलित प्रबन्ध रूप से किया जाता है और एक वह जिसमें प्रकृति की सामान्य से सामान्य बातों पर अलङ्कारों की झड़ी बाँध दी जाती है। 'पूर्ण'जी कवि और रसज्ञ दोनों ही थे और साथ ही साथ अपनी आँखों से देखना भी जानते थे। उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। सामान्य घटनाओं को भी वे विशेष दृष्टि से देखते थे और उनके सम्बन्ध में असाधारण एवं चमत्कार-पूर्ण विचार प्रकट करते थे। उन्होंने पूर्वोक्त दोनों ही पद्धतियों के अनुसार प्रकृति-वर्णन किया है और कहीं कहीं यह बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है। इसके अतिरिक्त 'पूर्ण'जी प्रकारान्तर से प्रकृति के पुजारी भी थे। जिनको उनके साथ कभी छुट्टियों में घूमने का अवसर मिला है उन्हें यह बात भूली न होगी कि वाटिका में जाकर 'पूर्ण' जी बहुत देर तक कलियों की सुन्दरता देखते रहते थे। हमने स्वयं उन्हें कई बार क्राइस्ट चर्च कालेज के अहाते में लगे हुए, कई रङ्ग के गुलाबों की शोभा को निरीक्षण करते देखा है। रात्रि में 'पूर्ण' जी कभी-कभी कहने लगते थे कि यदि कहीं अच्छी दूरबीन मिल जाय तो इन ग्रहों के रूप-रङ्ग को एक बार भली भाँति देख तो लें।

ऋतुवर्णन में 'पूर्ण'जी ने छहों ऋतुओं पर छन्द लिखे हैं, और ये छन्द बड़े सुन्दर हैं। वसन्त ऋतुराज है। उसे राजा

मानकर 'पूर्ण'जी ने उसका यथेष्ट स्वागत किया है और उसके वियोग में अश्रुपात भी किया है। पावस का वर्णन बड़ा ही उत्कृष्ट है। यों तो रससिद्ध कवीश्वर के लिए किसी भी विषय पर कुछ लिख डालना कोई कठिन बात नहीं है; पर हिन्दी और संस्कृत-साहित्य में पावस ऋतु पर बहुत कुछ लिखा गया है। 'पूर्ण' जी ने मेघदूत का अनुवाद किया था, जिसमें वर्षाकालीन दृश्य का चित्र खींचा गया है। उन्होंने उसका मूल आधार वाल्मीकीय रामायण भी अवश्य पढ़ा होगा, जिसमें वर्षा ऋतु पर बहुत कुछ लिखा गया है। कदाचित् इसी लिए 'पूर्ण'जी का वर्षा-वर्णन अन्य ऋतुओं के वर्णन की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है।

अन्य कविताएँ

इन पुस्तकाकार रचनाओं के अतिरिक्त 'पूर्ण-पराग' में हमने उनकी अन्य विख्यात रचनाओं का भी संकलन किया है। इनमें से कुछ तो पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं; परन्तु उनकी सुरक्षा के लिए हमने उन्हें यहाँ प्रस्तुत पुस्तक में सङ्कलित कर दिया है। इन रचनाओं के नाम हैं—

१ कादम्बरी, २ सरस्वती, ३ सुन्दरीसौन्दर्य्य, ४ भक्ति और वेदान्त, ५ ब्रह्मविज्ञान, ६ रम्भाशुक-संवाद, ७ विश्वविद्यालय डेपूटेशन, ८ नूतन वर्ष का स्वागत, ९ शकुन्तला-जन्म।

इन कविताओं का भी कुछ संक्षिप्त परिचय दे देना अप्रासंगिक न होगा।

सरस्वती—यह कविता दस छन्दों की है और इसमें वीणा-पाणि की वन्दना की गई है। कहना न होगा कि ये छन्द बड़े ही उत्कृष्ट हैं। वन्दना में भक्त-हृदय का अपूर्व उद्‌गार है। अलंकारों की छटा दर्शनीय है। सरस्वती के वरद पुत्र होकर भला 'पूर्ण' जी इसकी वन्दना कैसे न करते ?

सुन्दरीसौन्दर्य्य—यह भी अपने ढङ्ग की एक मनोरम कविता है। इसमें किसी सुन्दरी के रूप-लावण्य का वर्णन किया गया है। रसिकहृदय 'पूर्ण' जी के लिए ऐसा वर्णन करना कोई नई बात न थी। यह तो कवि-परम्परा ही है। इसमें भी भिन्न-भिन्न अलङ्कारों का आश्रय लेकर 'पूर्ण' जी ने कोई और ही स्वारस्य डाल दिया है।

भक्ति और वेदान्त—हम ऊपर कह आये हैं कि 'पूर्ण' जी को वेदान्त से बड़ा अनुराग था। वे वास्तव में भक्त भी थे; अतः उनके काव्यों में वेदान्त-सम्बन्धी विचारों का भी आभास मिलता है। इन छन्दों में हमें वह साहित्य-स्वारस्य नहीं दिखलाई पड़ता, जिसका दर्शन 'पूर्ण' जी की अन्य रचनाओं में हुआ है। इसका कारण यही है कि उपदेश-पूर्ण रचना में काव्य-चमत्कार कम होता है और इसे साहित्य-मर्मज्ञों के लिए रुचिकर बनाने के उद्योग में कवियों को भग्नप्रयास होना पड़ता है। यदि निष्पक्ष भाव से यह कह दिया जाय कि श्रीमद्भागवतकार भी जहाँ वर्षा के वर्णन में आध्यात्मिक तथ्य-निरूपण करने लगे हैं, वहीं उसमें स्वारस्य का ह्रास हो गया है तो अनुचित न होगा।

रम्भा-शुक-संवाद—यह एक पुराण-प्रख्यात आख्यान है। कहते हैं कि जब बालब्रह्मचारी शुकदेवजी तपश्चर्य्या में निरत होकर ब्रह्मतत्त्व का अन्वेषण कर रहे थे, तब उनके चरित्र-बल की परीक्षा करने के लिए इन्द्र ने अपने अमोघ अस्त्र रम्भा का प्रयोग किया था। इन्द्र के यहाँ ऐसी-ऐसी कई अप्सराएँ रहती हैं, जिन्हें देवाङ्गना कहते हैं। इनके नाम हैं रम्भा, उर्वशी, मेनका, घृताची, मंजुघोषा आदि। इन्द्र की आज्ञा से ये देवांगनाएँ बड़े-बड़े तपस्वियों की गाढ़ी कमाई को मुहूर्त मात्र में नष्ट कर देती हैं; परन्तु इनका कुछ बिगड़ता नहीं।

पाठकों को ज्ञात होगा कि मेनका ने महर्षि विश्वामित्र की सारी तपस्या नष्ट की थी और उन्हें गृहस्थ-जीवन में फाँसकर उन्हीं के संयोग से शकुन्तला को जन्म दिया था। उर्वशी ने किसी समय अर्जुन के चरित्र-बल की परीक्षा की थी। उसने तो पुरूरुवा को अपने प्रेमपाश में बाँधकर अपने हाथ की पुतली बना रक्खा था। इन देवांगनाओं के ऐसे ही कार्य्यकलाप हैं और ये इन्द्र के ही संकेत से ऐसा करती हैं।

रम्भा ने भी शुकदेवजी की परीक्षा के लिए ऐसा ही किया। वह तपोवन में इनके पास आकर नारी-जीवन के आकर्षण और महत्त्व पर व्याख्यान झाड़ने लगी और अपने पक्ष के समर्थन के लिए बड़े-बड़े तर्कों और युक्तियों का आश्रय लेने लगी; परन्तु जिन-जिन युक्तियों से उसने अपने मत का समर्थन किया था, उन्हीं-उन्हीं युक्तियों से शुकदेवजी ने उसके तर्कों का

खण्डन किया। यह कविता क्या है, पूरा खण्डन-मण्डनात्मक व्याख्यान है।

ऐसे ललित प्रसङ्ग की उपेक्षा भला 'पूर्ण'जी कैसे कर सकते थे। शृंगार और वैराग्य का इसमें मंजुल सन्निवेश था। 'पूर्ण' जी दोनों विषयों पर बड़ी सफलता के साथ लिख सकते थे। नारी-जीवन की मनोहरता का उन्हें पूर्ण अनुभव था और ब्रह्मज्ञान में भी उनका प्रवेश था, अतः यह कविता उनसे अच्छी बन पड़ी है। वास्तव में जो जिसका विषय होता है वह उसी पर सफलता-पूर्वक लिख सकता है। इस विषय पर इससे पहले रीवाँ-नरेश श्रीयुत रघुराजसिंह ने भी अपने भक्तमाल में लिखा था; परन्तु उसमें ऐसा साहित्यिक स्वारस्य नहीं है।

शकुन्तला-जन्म—यह 'पूर्ण'जी की उन्नीस छन्दों की एक सुन्दर रचना है। इसमें रूपमाला छन्द का प्रयोग किया गया है। इसकी कथा महाभारत से ली गई है। रम्भा-शुक-संवाद का परिचय देते हुए जैसा हम पहले कह आये है, विश्वामित्र की तपस्या से भयभीत होकर सुरेश्वर ने उनके ऊपर अपने मेनका-अस्त्र का प्रयोग किया था। यह मेनका विश्वामित्र के आश्रम में आकर अपना रङ्ग फैलाने लगी। इसका मधुर गान सुनकर महर्षि-प्रवर विश्वामित्र ने नेत्र खोल दिये तो सामने रतिशोभाविनिन्दिनी अङ्गना को देखकर उनका सारा विराग भूल गया। अनङ्ग के बाण वास्तव में बड़े विषम होते हैं। इनका वार झेलना बड़ा टेढ़ा काम है। शूल, खड्ग और कुलिश के प्रहारों की कथा को तृणवत्

माननेवाले वीरों को भी अनङ्ग अपने सुमन-बाणों से विद्ध करके व्यथित कर डालता है।

जिन महर्षि विश्वामित्र ने विधाता से विरोध करके नूतन सृष्टि-निर्माण का उद्योग किया था, जिन्होंने त्रिशंकु को अपने तपोबल से सदेह स्वर्ग भेजने का उद्योग किया था, जिन्होंने विश्वेदेवा को शाप देकर स्वर्ग से गिरा दिया था, उनका प्रचण्ड प्रताप इस स्त्री को देखते ही शीतल पड़ गया और इसके साथ स्वच्छन्द विहार करके मुनिवर ने अपनी तपस्या क्षीण की और अपने चारित्र्यबल पर बट्टा लगाया। इसी के गर्भ से शकुन्तला नाम की कन्या उत्पन्न हुई जिसका विवाह पुरुवंशावतंस दुष्यन्त के साथ हुआ था। इसी के गर्भ से राजकुमार भरत का जन्म हुआ, जिनके नाम पर भारतवर्ष विख्यात हुआ है और जो कौरव वंश के प्रवर्तक हुए। इसी कथा के आधार पर कविवर कालिदास ने अपना लोक-विश्रुत शकुन्तला नाटक तैयार किया था।

प्रस्तुत कविता में 'पूर्ण'जी ने पर्याप्त कवि-कौशल प्रदर्शित किया है। अलंकारों का भी इसमें मनोरम सन्निवेश है। सोलहवें छन्द में रूपकातिशयोक्ति का आश्रय लेकर 'पूर्ण'जी ने मेनका के गात्रों का वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। इसके साहित्यिक सौन्दर्य्य पर मुग्ध होकर पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने इसे 'कविताकलाप' में स्थान दिया था। यही इसके सौन्दर्य्य एवं वैशिष्ट्य का परिचायक है। इसमें 'पूर्ण'जी की प्रबन्ध-काव्य की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

कादम्बरी—यह 'पूर्ण'जी की एक अत्यन्त सुन्दर रचना है। इसमें यद्यपि सिर्फ छः सवैये हैं, परन्तु ये अपने ठाट के निराले हैं। भाषा तो इसकी बड़ी ही सरस है। रस के साथ गुण और वृत्ति का मनोरम सामञ्जस्य है। इसमें सितार बजाती हुई किसी अनवद्याङ्गी सुन्दरी का चित्र खींचा गया है। कुशल चित्रकार 'पूर्ण' के द्वारा खींचे जाने से इस चित्र में कितनी सरसता आई है, इसका अनुभव सहृदय रसज्ञ ही कर सकते हैं। इस रसाप्लाविनी कविता के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने इसे भी अपने 'कविताकलाप' में स्थान दिया था।

'पूर्ण'जी जहाँ साहित्य-प्रेमी थे वहाँ सङ्गीतानुरागी भी थे। सङ्गीत का तो उन्हें यहाँ तक प्रेम था कि कभी-कभी आवश्यक कामों को छोड़कर इसके द्वारा पहले अपना मनोविनोद कर लिया करते थे तब जाकर कहीं दूसरी ओर ध्यान देते थे। सङ्गीतप्रियता तो उनके मरणपर्यन्त मन्द नहीं हुई। अन्तिम दिनों में रुग्ण अवस्था में भी वे किसा न किसी गायक को बुलाकर अपना मनोविनोद कर लिया करते थे।

'पूर्ण'जी को कहाँ तक सङ्गीतशास्त्र का ज्ञान था, इसका पता इस कविता के पढ़ने से लग जायगा। सङ्गीतशास्त्र के कई पारिभाषिक पदों का इसमें यथास्थान मनोरम सन्निवेश किया गया है। सङ्गीतकारों ने रागों का जैसा परम्परागत प्रभाव मान रक्खा है, उससे 'पूर्ण' जी पूर्ण रूप से परिचित थे और उसको उसी प्रकार

मानने में उन्हें कोई आपत्ति न थी। जहाँ आजकल अँगरेज़ी शिक्षा-दीक्षित लोग इनको रूढ़ि का समर्थक कहकर अवहेलना करते हैं वहाँ 'पूर्ण'जी की इन पर पूर्ण श्रद्धा थी। पाठकों के मनोविनोद के लिए हम यहाँ पर इसका एक छन्द उद्धृत करते हैं—

उर प्रेम की जोति जगाय रही, मति को बिनु यास घुमाय रही।
रस की बरसात लगाय रही, हिय पाहन से पिघलाय रही।
हरियाले बनाय के रूखे हिए, उतसाह का पैगें झुलाय रही।
इक र ाग अलापि के भाव भरी, षटराग प्रभाव दिखाय रही।

नूतन वर्षाभिनन्दन—यह कविता संवत् १९६७ में लिखी गई थी। इसमें नूतनाब्द का स्वागत भारतवर्ष की ओर से किया गया है। इसमें विक्रमीय और ख्रीष्टीय दोनों संवतों का स्वागत किया गया है। यह कविता खड़ी बोली में है। ऐसे रूखे विषय पर सुन्दर कविता करना 'पूर्ण' जैसे रससिद्ध कवि का ही काम था। इसमें सब मिलाकर ४० छन्द हैं। अन्त में 'पूर्ण'जी ने भरतवाक्य में सत्कवियों के कल्याण के लिए प्रार्थना की है।

हिन्दू-विश्वविद्यालय के डेपूटेशन का स्वागत—इसकी रचना भी संवत् १९६७ में हुई थी। काशी-विश्वविद्यालय के लिए धन एकत्र करते हुए महामान्य पण्डित मदनमोहन मालवीयजी जिस समय डेपूटेशन लेकर कानपुर गये थे, उस समय उनका स्वागत करने के लिए एक विराट् अधिवेशन हुआ था।

उसी के समक्ष 'पूर्ण'जी ने यह कविता पढ़ी थी। इसमें सब मिलाकर १६ छप्पय छन्द हैं। इसके प्रथम छप्पय का गान स्थानीय बालिकाविद्यालय की सङ्गीतप्रेमी छात्राओं के द्वारा किया गया था। इस कविता का उपस्थित जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। स्वयं 'पूर्ण'जी ने विश्वविद्यालय के लिए ५००० रुपये दान दिये थे। इसमें 'पूर्ण'जी ने काशी-विश्वविद्यालय के लिए जनता को जी खोलकर दान देने की सम्मति दी थी। इस सम्बन्ध में आपने बड़ा मार्मिक व्याख्यान भी दिया था।

अन्य रचनाएँ—इनके अतिरिक्त 'पूर्ण'जी की और भी बहुत सी सुन्दर-सुन्दर रचनाएँ हैं, जिनमें अन्योक्तियों का विशेष स्थान है; परन्तु उनका सन्निवेश हम प्रस्तुत पुस्तक में स्थानाभाव से न कर सके।

पत्रकार 'पूर्ण'जी

रसिकसमाज और श्री ब्रह्मावर्त सनातन धर्ममहामण्डल का परिचय देते हुए हम ऊपर कह आये हैं कि इन संस्थाओं को उन्नति के पथ पर ले चलने के लिए 'पूर्ण'जी ने उत्कट उद्योग किया था; क्योंकि इनसे उन्हें बड़ा अनुराग था। कविता की ओर उनकी जैसी अनुरक्ति थी, धर्म की ओर भी उनकी वैसी ही प्रवृत्ति थी। जिस समय 'पूर्ण'जी कानपुर में आये उस समय 'रसिकसमाज' का अस्तित्व तो अवश्य था और कुछ न कुछ साहित्यसेवा भी वह अवश्य करता था; परन्तु अब तक उसने

कोई उल्लेखनीय काम नहीं किया था। उसके सभापति पण्डित ललिताप्रसाद त्रिवेदी एक प्रतिभाशाली कवि तो अवश्य थे; परन्तु सार्वजनिक जीवन से उनका कुछ भी सम्बन्ध न था। अन्य सदस्य भी इसी प्रकार के थे। अँगरेज़ी-शिक्षा-दीक्षित कोई भी न थे। 'पूर्ण'जी को छोड़ और सब सदस्य कोरे कविताप्रिय थे।

रसिकसमाज की कार्यवाही को सर्वप्रिय बनाने का विचार पहले-पहल 'पूर्ण'जी के हृदय में उदित हुआ। इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उन्होंने संवत् १९५४ में 'रसिक-वाटिका' नाम की मासिक पत्रिका निकाली। इसमें तत्कालीन 'रसिकसमाज' के सदस्यों की रचनाएँ छपा करती थीं और कानपुर के साहित्यानुरागियों का मनोविनोद इसी से हुआ करता था। उस समय कानपुर से कोई पत्र नहीं निकलता था। कभी-कभी पण्डित प्रतापनारायणजी मिश्र के उद्योग से 'ब्राह्मण' की हरगङ्गा सुनाई पड़ती थी, पर सर्वदा वह भी नहीं।

'रसिक-वाटिका' ८ वर्ष तक चलकर बन्द हो गई; परन्तु 'पूर्ण' जी का उत्साह मन्द नहीं हुआ। उन्होंने इसके स्थान पर 'रसिक मित्र' पत्र निकाला और यावज्जीवन उसका सम्पादन करते रहे। इसी बीच, संवत् १९६८ में, 'पूर्ण'जी ने श्री ब्रह्मावर्त सनातनधर्म-महामण्डल की ओर से 'धर्म-कुसुमाकर' नाम का मासिक पत्र प्रकाशित किया। इसके द्वारा 'रसिक-समाज' की सेवा होती थी और सनातनधर्मानुरागी महानुभावों की धार्मिक जिज्ञासा भी पूर्ण होती रहती थी। इस प्रकार 'पूर्ण' जी ने एक

पत्रकार की हैसियत से धर्म और साहित्य की सराहनीय सेवा की।

'पूर्ण' जी का काव्य

'पूर्ण' जी एक प्रतिभाशाली कवि थे। कविता उनमें एक ईश्वर-दत्त विभूति थी। वे स्वान्तःसुखाय कविता लिखते थे और कभी-कभी अवसर की प्रेरणा से भी लिखा करते थे। किसी व्यक्तिविशेष के अनुरोध को पूर्ण करने के लिए वे कभी नहीं लिखते थे। इसी लिए हम देखते हैं कि उनकी उमङ्ग में लिखी हुई कवि-ताओं में जैसा सौन्दर्य्य है, वैसा फ़र्माइशी कविताओं में नहीं दृष्टि-गोचर होता और ऐसा होना नितान्त स्वाभाविक भी है।

राय साहब की रचनाएँ इस दृष्टि से दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं—एक तो वे रचनाएँ जिनको इन्होंने स्वान्तःसुखाय लिखा है और दूसरी वे जिनको उन्होंने किसी परिस्थिति के अनु-रोध से लिखा है। इनमें चन्द्रकला भानुकुमार नाटक, धाराधर-धावन और प्रकृति सौन्दर्य्य के स्फुट छन्द तो प्रथम श्रेणी की परिधि में आते हैं और अवशिष्ट दूसरी श्रेणी की परिधि में। इसी वर्गी-करण के अनुसार हमें इनमें साहित्यिक सौन्दर्य्य भी प्रतीत होता है। यह हमारी व्यक्तिगत राय है। हम यह नहीं कह सकते कि अन्य आलोचक भी हमारे इस विचार से सहमत होंगे या नहीं। चन्द्रकला-भानुकुमार उनका प्रथम प्रयास है। सम्भव है, इससे पहले उन्होंने कुछ और भी छन्द लिखे हों। उनका

पता अभी नहीं लगा है। कहना न होगा कि उक्त नाटक काव्य की दृष्टि से अवश्य अच्छा है। कला और नाटकीय दृष्टि से भले ही इसके सम्बन्ध में कुछ कहा जा सके। विकास की दृष्टि से जब हम विचार करते हैं तब हमें प्रतीत होता है कि 'पूर्ण' जी की अन्य रचनाएँ इतनी सफल नहीं हुई। अनुवाद होते हुए भी धाराधर-धावन में जैसा काव्य-सौन्दर्य्य दृष्टिगोचर होता है, वैसा उनकी अन्य रचनाओं में नहीं।

व्रजभाषा के प्रबल समर्थक होते हुए भी 'पूर्ण'जी खड़ी बोली के विरोधी न थे। उनका विचार था कि जब देश की अन्य भाषाओं में सफलता-पूर्वक कविता हो सकती है तो फिर खड़ी बोली में ही अच्छी कविता क्यों नहीं हो सकती।

'पूर्ण' जी गद्य और पद्य की भाषा के एकीकरण के विरुद्ध थे और इस विरोध का कारण भी प्रत्यक्ष था। संसार में किसी साहित्य के गद्य और पद्य की भाषा एक नहीं है। उर्दू, फारसी, अँगरेज़ी आदि सभी साहित्य के गद्य-पद्य में ऐसा ही अन्तर परिलक्षित होता है, फिर हिन्दी ही में गद्य और पद्य की भाषाओं के एकीकरण का अनुरोध विशेष रूप से क्यों किया जाय।

कविता में वे अलंकारों का ठूँसना बुरा समझते थे, और अलंकारों के अनुरोध से भावों की हत्या करना वे गुरुतर अपराध मानते थे। अन्य भाषाओं के शब्दों का संस्कार करके ग्रहण करना वे अच्छा समझते थे।

भाव-साम्य

कवियों की रचनाओं में भाव-साम्य भी देखा गया है। 'पूर्ण' जी कवि थे, इसलिए उनकी रचनाएँ भी इस नियम का अपवाद नहीं कही जा सकतीं। भाव किसी कविविशेष की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं हैं। इनका तो एक विराट् वायुमण्डल है, सभी कवि इसमें अपनी प्रतिभा के अनुसार उड़ान भरते हैं। जो जितनी ऊँचाई पर पहुँच जाता है वह उतना ही उत्कृष्ट भाव ग्रहण करता है; परन्तु उनके अभिव्यक्त करने की शैली अपनी अपनी होती है। हमने देखा है कि वेदव्यास ने श्रीमद्भागवत में आदि-कवि के भावों को अविकल रूप से ग्रहण किया है। पर कोई आलोचक उन्हें आज काव्यचौर कहने का दुःसाहस नहीं करता। यह उनके व्यक्तित्व का फल है। यदि कोई आजकल का कवि ऐसा करने का दुःसाहस कर डालता तो उसे आलोचकों की बुरी तरह से फटकार सहनी पड़ती। पाठकों के मनोविनोदार्थ हम वे दोनों श्लोक यहाँ पर उद्धृत करते हैं—

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः।
वैश्यः पटुन्विट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामियात् ॥

(श्रीमद्भागवत, चतुर्थस्कन्ध, २३ अ०, ३२ वाँ श्लोक)

यह आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के इस श्लोक का संक्षिप्त संस्करण है—

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्
स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् ।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयात्
जनश्च शूद्रोपि महत्त्वमीयात ॥
(वाल्मीकीय रामायण)

जब संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों की रचनाओं में ऐसा भाव-साम्य परिलक्षित होता है तो फिर अन्य कवियों की रचनाओं की तो कोई बात ही नहीं। उनके द्वारा यदि कोई ऐसा अपराध हो जाय तो वह सर्वथा क्षम्य है। 'पूर्ण'जी भी कभी-कभी इसी प्रकार अन्य कवियों के भावों को अपनी रचनाओं में ग्रहण कर लिया करते थे, पर यह काम वे ऐसी सुन्दरता से करते थे कि बहुतों को इस बात का पता भी नहीं लगने पाता था कि इसका मूल आधार क्या है। संस्कृत की स्तुतियों को ही 'पूर्ण'जी ने विशेष रूप से ग्रहण किया है; क्योंकि इनमें बड़ी लोच होती है—

१—पारिजात शाखा की सुलेखनीं उदार लैकै,
लिखै ब्रह्मरानी जो समस्त गुन आगर है;
'पूरन' अकाश को बनावै पत्र सीमातीत,
मसीं कै त्रिलोक अम्बुराशि जो उजागर है।
करै श्रम तीनों काल शेष गनराज संग,
जिनको प्रसिद्ध सब जब में प्रजागर है;
पूरो ह्वै सकै न यश रूरो रामनागर को,
भला कहूँ गागर में भरो जात सागर है॥

इस भाव पर कविवर सूरदासजी ने निम्नलिखित पद लिखा था। देखिए इनमें कितना साम्य है।

जो गिरिपति मसि घोरि उदधि में लै सुरतरु निज हाथ।
मम कृत दोष लिखे सारद महि तऊ नहीं मिति नाथ॥
(सूरदास)

इससे पहले इसी भाव का स्वागत कबीरजी ने किया था—

सात समँद की मसि करौं लेखनि सब बनराय।
धरती सब कागद करौं हरिजस लिखा न जाय॥

परन्तु इनका मूल आधार श्री पुष्पदन्ताचार्य्य का निम्नलिखित श्लोक है:—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रं,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥
—महिम्नस्तोत्र

२—इसी प्रकार दो मङ्गलाचरण और भी हैं:—

कुन्द-इन्दु हिमधार धवल दुति सुन्दर बानी;
शुभ्र वसन वर लसन अभय वर कर सुखदानी।
सित सरोज आसीन हंस शुभ वाहनवारी;
बीना-पुस्तक-पानि कुमति-मल मेटनहारी॥

विधि-हरि-हरादि सुर-वृन्द-वर-वन्दित जो श्री भगवती;
'पूरन' विधि इच्छा करे वरदा मातु सरस्वती।

यह भी निम्नलिखित सरस्वती के वन्दनावाले श्लोक का अनुवाद है।

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना;
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निश्शेषजाड्यापहा।

३—और भी :—

वैयाँ-वैयाँ चलत किलकि ब्रजजन के टेरे,
हँसत मनोहर मन्द मधुर लहि मोद घनेरे।
बोलत 'मा' 'वा' बैन बिसारैं सुधि-बुधि मन की,
गोपिन-तारिन सङ्ग मंजु-धुनि सुनि कङ्कन की।
यों विलसत जो 'पूरन' सदा ईश कंद आनंद को,
बन्दहुँ सो इंदीवर-वदन श्यामल नंदन-नंद को।

यह भी निम्नलिखित श्लोक का अनुवाद है।

दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजन्तं व्रजसदनजनाह्वानतः प्रोल्लसन्तं
मन्दं मन्दं हसन्तं मधुमधुरवचो मेति मेति ब्रुवन्तम्,
गोपालीपाणितालीतरलितवदनध्वान्तमुग्धान्तरालं,
वन्दे तन्देवमिन्दीवरविमलदलश्यामलं नन्दबालम्।

४—इसी प्रकार शरद् ऋतु के निर्मल नील नभोमण्डल में नक्षत्र-मण्डल को देखकर 'पूर्ण'जी ने एक छन्द इस प्रकार लिखा है :—

सरद-निसा में ब्योम लखि के मयङ्क बिन,
'पूरन' हिये में इमि कारन विचारे हैं।
बिरह जराई अबलान को दहत चन्द्र,
तातें आज तापै विधि कोपे दयावारे हैं॥
निसिपति पातकी को तम की चटान बीच,
पटकि पछारि अङ्ग निपट बिदारे हैं।
तातें भयो चूर-चूर उचटे अनन्त कन,
छिटिके सघन सो गगन मध्य तारे हैं॥

यह छन्द नैषधकार कविवर श्रीहर्षजी के चन्द्रोपालम्भवाले प्रकरण के निम्नलिखित श्लोक का अनुवाद है; परन्तु इसमें पर्याप्त सौन्दर्य्य है :—

अयमयोगिवधूवधपातकै-
र्भ्रमिमवाप्य दिवः खलु पात्यते।
शितिनिशाद्दृषदि स्फुटमुत्पतत्,
कणगणाधिकतारकिताम्बरः॥

इसी प्रकार भानुकुमार की विरह-व्यथा का वर्णन करते हुए 'पूर्ण'जी ने निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी हैं :—

मत जान तू बिधुबाल, है खैर चन्दन भाल।
नहिं जटा मेरे शीश, मण्डील आहि रतीश॥
नहिं जाह्नवी की धार, हैं मुक्त हीरन हार।
है सर्प नाहिं अनङ्ग! यह पर्यो शेला अङ्ग॥
मैं अहहुँ राजकुमार, शिव जान मोहिं न मार।

इसी भाव पर किसी कवि का निम्नलिखित छन्द है :—

गङ्ग नहीं मुकता भरी माँग है, चन्द नहीं यह उन्नत भाल है।
नील नहीं मखतूल की कुञ्ज है, शेष नहीं सिर बेनी बिसाल है॥
भूति नहीं मलयागिरि है, बिजया है नहीं बिरहा सौं बिहाल है।
ऐ रे मनोज सम्हारि कै मारियौ, ईस नहीं या वियोगिनि बाल है॥

इसी भाव पर निम्नलिखित श्लोक है और यही इन दोनों छन्दों का मूल आधार है:—

जटा नेयं वेणी कृतकचकलापो न गरलं
गले कस्तूरीयं शिरसि शशिलेखा न कुसुमम्।
इयं भूतिर्नाङ्गे प्रियविरहजन्मा धवलिमा
पुरारातिभ्रान्त्या कुसुमशर किं मां व्यथयसि॥

५—किसी निद्रित कलिका पर एक मुग्ध भृङ्ग को सर्वस्व निछावर कर देने से खीझकर राय साहब ने निम्नाङ्कित छन्द कहा है। परन्तु इस छन्द में कविवर बिहारीलालजी के उसी प्रसिद्ध दोहे का भाव पल्लवित किया गया है, जिसके आधार पर सतसई का निर्माण किया गया था—

भयो ना विकास है सुबास को सुपास नहीं,
असन प्रकास भानु जो पै बिस्तारो है;
रज नाहीं, रंग नाहीं, मधु को प्रसंग नाहीं,
होत ना तरल लै तरंग को सहारो है।

तापै भौंर रीझो, मन खीझो जात देखे दसा,
'पूरन' ये कहैंगे हाय नेम अनुसारो है;
फूल कञ्ज बृन्द मकरन्द को बिहाय अर-
बिन्द की कली में जो मलिन्द मतवारो है॥

इसी भाव का स्वागत काव्य-कल्पद्रुम में चपलता के उदाहरण में इस प्रकार किया गया है—

है अन्य, प्रौढ़, बहु पुष्पलता भलीं ये
तो लौं विनोद इनसे कर तू खिलीं ये।
मुग्धा अजात-रजसा नव-मालती को
क्यों भृङ्ग! मर्दित वृथा करता कलीं को॥
—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार

परन्तु जिस सुन्दरता और विदग्धता के साथ इस भाव की अभिव्यक्ति कविवर बिहारीलालजी ने की है, वैसी किसी से नहीं बनी। हम तो यहाँ तक कहेंगे कि बिहारी की रचना अपने मूल आधार से बढ़ गई है—

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं बिकास यहि काल।
अली कली ही सों लग्यो, आगे कौन हवाल॥"
—बिहारी

बिहारी ने यह भाव गाथासप्तशती से लिया था। देखिए यह मूल आर्या इस प्रकार है—

जावण कोस, विकासे, पावहि ईसीस मालई कलिआ।
मारन्द पाण लोहिल्ल भँवर तावच्चि प्रमेलसि॥

इसी भाव पर निम्नलिखित श्लोक भी है। विकटनितम्बा देवी का पाण्डित्य देख लीजिए—

अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग !
नूनं विनोदय मनः सुमनोलतासु ।
मुग्धामजातरजसां कलिकामकाले
व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः ॥

६—कृष्णजन्म के माङ्गलिक अवसर की विलक्षणता दिखलाते हुए 'पूर्ण'जी ने निम्नाङ्कित छन्द लिखा है और अतिशयोक्ति का आश्रय लेकर इसमें अपूर्व सौन्दर्य का समावेश कर दिया है।

औरे भाँति आज नीर यमुना किलोलति है,
औरे भाँति डोलत समीर सुखदाई है।
औरे भाँति भायो है कदम्बन भ्रमर-भार,
धुरवान मुरवान और धुनि छाई है ॥
स्याम के जनम-दिन भीर गोप-गोपिन की,
औरे भाँति नन्द-भवन जात भूरि धाई है।
औरे भाँति 'पूरन' रसाल गान छाजत है,
औरे साज सङ्ग आज बाजत बधाई है ॥

इसी भाव का एक छन्द कविवर पद्माकर का भी मिलता है—

और भाँति कुञ्जन में गुंजरत-भौंर-भीर,
और डौर झौरन में बौरन के ह्वै गये।
कहै 'पदमाकर' सु औरे भाँति गलियान,
छलिया छबीले छैल औरै छबि छ्वै गये ॥

औरै भाँति बिहँग-समाज में अवाज होती,
ऐसे ऋतुराज के न आज दिन द्वै गये।
औरै रस औरै रीति औरै राग औरै रङ्ग,
औरै तन औरै मन औरै बन ह्वै गये॥

७—'पूर्ण'जी ने भाग्य की प्रबलता का समथन इस प्रकार किया है :—

भये हू सुरक्षित सो नसत अवश्य जापै,
होति प्रतिकूल है नजरि भगवान की।
रच्छा बिनु कीन्हें हू सुछन्द ठहरात जापै,
दयादृष्टि होति हरि करुनानिधान की॥
सूखत तड़ागन के तीर तरु बागन के,
करिए सिंचाई बरु उत्तम बिधान की।
'पूरन' भनत पै पहार वारे पादप के,
आतप सुखावत ना ग्रीसम के भान की॥

इसी भाव पर और छन्द देखिए:—

राखन जाको चहैं प्रभु आपुही, ताकहँ कोऊ सँहारि सकै ना।
पै जबै मारनैं चाहैं हरी, तब तो तेहि कोऊ उबारि सकै ना॥
जीवत हैं बनहू में अनाथ, कोऊ कछू ताको बिगारि सकै ना।
पै घरहू में सनाथ मरैं, विधि की गति कोऊ विचारि सकै ना॥

—हरनाथ

गोस्वामी तुलसीदास का तो यह अटल सिद्धान्त ही था कि :—

'तुलसी' बिरवा बाग के, सींचे ते कुम्हिलायँ;
राम भरोसे जो रहैं पर्वत पर हरियायँ।

परन्तु इन भावों का मूल आधार हितोपदेश का निम्नलिखित श्लोक है, इसी के भावों को लेकर तीनों कवियों ने अपने छन्दों में पल्लवित किया है—

अरक्षितस्तिष्ठति दैवरक्षितम्
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोपि वने विसर्जितः
कृतप्रयत्नोपि गृहे विनश्यति॥

८—भक्त कवियों को अपना काव्य अत्यन्त विनीत भाव से भगवान् कृष्ण को अर्पण करते हुए देखा गया है। 'पूर्ण'जी के निम्नलिखित छन्द में यह भावना स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है और यही भावना हम काव्यप्रभाकर के प्रणेता श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद जी 'भानु' के छन्द में देखते हैं। पाठक इनकी तुलना करके देखें—

यदपि प्रवीन कवि 'पूरन'-रसिक आप,
चाखे रस चोखे बहु कविता ललामा के;
तौहूँ लखि दीनता को छमा करि हीनता को,
भाव अनुसारिए उदार गुनग्रामा के।
काव्य कुसुमाकर के मंजुल सुमन लीन्हें,
पत्र तुलसी के अब लीजै बिन दामा के;

व्यञ्जन सुधा से मनरञ्जन बिसारि आज,
अङ्गीकार कीजै चार चाँवर सुदामा के॥
छन्द को प्रबन्ध त्योंही व्यंग नायिकादि भेद,
उद्दीपन भाव अनुभाव पति बामा के।
भाव सञ्चारी असथायी रस भूषण हू,
दूषण अदूषण जो कविता ललामा के॥
काव्य को विचार 'भानु' लोक उक्ति सार कोष,
काव्य-परभाकर में साजि काव्य सामा के।
कोविद कवीशन को कृष्ण मानि भेट देत,
अङ्गीकार कीजै चारि चाउर सुदामा के॥

९—वर्षा का वर्णन करते हुए 'पूर्ण' जी ने कृष्ण और वर्षा में होड़ दिखलाते हुए निम्नलिखित छन्द लिखा है, परन्तु यह एक दूसरे छन्द के भाव के आधार पर बनाया गया है। पाठक देखें कि इन दोनों में कितना भाव-साम्य है—

इत मोर पखा उत मोर नचैं, सुर चाप उतै इत है कछनी।
बकपाँत उतै इत मुक्त हरा, उत गाजन ह्याँ धुनि बेनु बनी॥
चपला है उतै इत पीतपटी, तन ह्याँ उत श्याम घटा है घनी।
रस 'पूरन' या ऋतु में सजनी, हरि पावस होड़ ठनी सो ठनी॥

इत स्याम घटा उत मो अलकैं, बक पाँति इतै उतै मोती लरी।
छनदा चमकै दिपै भाल उतै, सरचाप इतै, भ्रुव बङ्क धरी॥

इत तव पपिहा पिव पीव करै, बिसरै न उतै पिव एकौ घरी।
इतै बुन्द अघात उतै अँसुआ, बरसा बिरहीन मैं होड़ परी॥

—अज्ञात कवि

१०—सज्जनों की प्रवृत्ति में कैसी भी आपत्ति आने पर विकार नहीं उत्पन्न होता। इसका समर्थन तो सभी कवियों ने किया है। 'पूर्ण'जी का भी यही मत है, देखिए:—

करत न बक-बक धरत न बक-ध्यान,
चाल सो चलत जैसी चलत सदा से हैं;
भूलत न बान नीर-छीर बिलगावन की,
निज-कुल-कीरति के रहत उपासे हैं।
मानसर-तालवारे मोती के चुगनहारे,
'पूरन' जहान जस जिनके प्रकासे हैं;
झीलन में झाँकि झरन मारत न जाय भूलि,
यदपि मरत हंस भूखे औ पियासे हैं॥

इसी भाव पर कविवर रहीमजी का एक दोहा है—

"मानसरोवर ही मिलै, हंसन मुक्ता-भोग;
सफरिन भरे 'रहीम' सर, बक बालक नहिं जोग।"

गोस्वामीजी की भी एक सूक्ति इसी भाव पर है—

'जद्यपि अवनि अनेख सुख, तोय तामरस-ताल;
सन्तत 'तुलसी' मानसर, तदपि न तजत मराल।"

और भी:—

चाल न छाड़ैं कबौं कुल की, उनके अभिमान कोराखै गुसइयाँ।
बानि में अन्तर कैसे पड़ै, नित नीर और छीर के जे बिलगइया॥
तन्दुल के कन कैसे भखैं, नव मानस मोतिन के जे चुगइया।
काल दुकाल परैं कितनें, पै मराल न ताकत उच्च तलइया॥
—'अज्ञात कवि'

संस्कृत में भी महापुरुषों की प्रकृति के विषय में इस प्रकार कहा गया है—

घृष्टं घृष्टं त्यजति न पुनश्चन्दनं चारुगन्धम्;
दग्धं दग्धं त्यजति न पुनः कञ्चनं चारुवर्णम्।
छिन्नं छिन्नं त्यजति न पुनः स्वादुतामिक्षुदण्डम्
प्राणान्तेपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम्॥
—हनुमन्नाटक

महापुरुषों के दृढ़ विचारों के सम्बन्ध में राजर्षि भर्तृहरि की भी यही राय है :—

"रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता-
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेपि नैतादृशाः;
केचिद्वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद्वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः॥"

इसी अन्योक्ति के आधार पर राय साहब ने अपना निम्नांकित छन्द तैयार किया है :—

बरखनवारे साँचे होत मेघ कारे कोऊ,
सींचि जे जगत के करत काज खासे हैं।
कोऊ कोऊ बापुरे बलाहक पै नाहक ही,
छाय बीच अम्बर अडम्बर प्रकासे हैं॥
ऐ हो मीत चातक नहीं है यह बान नीकी,
दारिद् में दीनता के भाव जौन भासे हैं।
ऐ रे गैरे धुरवान देखि धुनि आरत सों,
काहे को पुकारत पियासे हैं, पियासे हैं॥
—'पूर्ण'

११—अल्पकालिक सम्मान पर अभिमान करना व्यर्थ है। पूर्णजी ने इस विषय पर एक अन्योक्ति लिखी है और इसमें श्राद्ध-पक्ष के कौवे को फटकारा है—

करि करि काँव काँव ठाँव ठाँव गाँव गाँव,
खाँव खाँव ही को ध्यान राखत हौ मन में।
ढोरन के घाव मुरदार मास जीवन के,
मल के मिलत मोद मानत छकन में॥
'पूरन' भनत होत औसर की औरै बात,
भये हू घृणित आई महिमा लखन में।
काग अभयागत हो! महिमा तुम्हारी सबै,
बीतिहै कनागत के पन्द्रा दिनन में॥

कविवर बिहारीलालजी ने भी इसी प्रकार प्रकार कौवे को फटकारने के व्याज से नीचों की निन्दा की है—

दिन दस आदर पाय के करि लै आप बखान ।
जौ लौं काग सराधपख तब लगि तो सनमान ॥

सुदामाचरित कृष्ण-काव्य का एक ललित प्रसंग है। 'पूर्ण'जी ने इस पर कुछ छन्द लिखे हैं। इनमें से निम्नलिखित छन्द तो कविवर नरोत्तम के भाव की छाया लिये हुए है—

'पूरन' ये कैसो कृष्ण जू को मीत मेरी बीर,
जाको तन पीरो छीन लागै जिमि सूबरो;
डोलत महीनों बलहीनों लकुटी के बल,
कटिबल खायो कै कढ़्यो है कहूँ कूबरो।
निकसीं नसन में मिलत मूँज मैले ताग,
भूख की बिथाहू ते अजौं ना दीन ऊबरो;
दूब को अहारी, कैधौं धूम को अहारी, कैधौं
पौन को अहारी, दुज काहे ऐसो दूबरो ॥

सीस पगा न झगा तनु पै, प्रभु जाने को आहि बसै केहि ग्रामा;
धोती फटी सी लटी दुपटी, अरु पाँय उपानहु की नहिं सामा।
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक, रहो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा ॥
—नरोत्तम

'पूर्ण'-पराग

चन्द्रकला-भानुकुमार नाटक

कलरव रुचिर सुनात करत जो गान बिहङ्गा।
बहति समीर सुबास ताल जल उठति तरङ्गा॥
करि करि मन्त्र बिधान साधु "ग्रीषम" सुख पावत।
रेचक प्राणायाम करत हिय उमँग बढ़ावत॥
सुनि रण शोर "प्रकाश" सुभट बर सहित उमङ्गा।
धाये अरि "तम" दमन बीर रस छलकत अङ्गा॥
बिछुरत पीतम "सीत" "वाम" वसुमति दुख गाये।
धीरज रह्यो पराय करुन रस मन लहराये॥ १॥

उवत भानु के भये सकल निशि तिमिर बिनाशा।
ज्यों नसात मोहांध होत जब ज्ञान प्रकाशा॥
उवत भानु पियरात प्रात तारे अकास यौं।
तेजमान जन अछत होत लघु बृन्द मन्द ज्यौं॥ २॥

बिकसे सरस सरोज अरुन वर तरुन सुगन्धित।
गुञ्जत मधुकर वृन्द मधुर मकरन्द दिये चित॥

ज्यौं आराधत सन्त चरन भगवन्त धनी के।
आनँद लहत अनन्त त्यागि सब शोच दुनी के ॥
ज्यौं कामी जन निरखि नारि सुन्दर मन वारैं।
ह्वै मनोज बस मन्द पतित जीवन सुख हारैं ॥
जग कमला कर गति निरखि चेतैं प्राणी क्यौं न।
कमल आज के कल नहीं कल के कमल परौं न ॥ ३ ॥

पिय प्रीति कछू सरसानी हिये, रुचि बाल बिहारहू की है घनी।
रस आस हुलास चमू ह्वै चढ़ी, रली लाज सकोचन हू की अनी ॥
रमनी छबि बैस की संधि समै, लखि 'पूरन', यौं सुखमा बरनी।
नव अङ्गना अङ्गन, शैशव सङ्ग, अनङ्ग की जङ्ग ठनी सो ठनी ॥४॥

गङ्गा जमुनी की कोऊ सुखमा बतावै,
कोऊ सङ्गति सतोगुन रजोगुन अमन्द की।
कोऊ धूपछाँह की बतावत छटा है,
कोऊ लाज पै चढ़ाई कुसुमायुध सुछन्द की ॥
सोभा सिन्धु नवला की बैस की बिलोकि,
सन्धि बारता सुहात मोहि 'पूरन' अनन्द की।
रूप देस एकै सङ्ग राजै उजियारी चारु,
जोबन के सूरज की शैशव के चन्द की ॥ ५ ॥

छाई अरुनाई तरुनाई की सुहाई अङ्ग,
भानु को प्रभात सोह्यो अरुन उजेरो है।

मन तें पराने बालपन के सरल खेल,
हाल सों बिहायो लखौ पंछिन बसेरो है ॥
'पूरन' अतन तेज आतप सरस ह्वैहै,
चन्द शिशुता को तिमि मन्द होत हेरो है।
सखियो दुपहरी में जानियो अबेरो जनि,
जोबन के ग्रीषम को जोइए सबेरो है ॥ ६ ॥

चन्द्रमुखी चाव भरी जैसे पिय चाकरी में,
सूरजमुखी त्यों मुख जोयो करै भान को।
शान्त रसै चाहै जिमि वासनाविहीन सन्त,
भौंरबृन्द लोभे त्यों प्रसून मधु पान को ॥
झूमि लगि भूमि रही डार फलदार,
जैसे राखत गुनी न उर लेश अभिमान को।
'पूरन' मिलत धर्म नीति उपदेश जामें
कौन भाँति भाखूँ बाग महिमा महान को ॥ ७ ॥

सुखद सीतल सुचि॰ सुगन्धित पवन लागो बहन।
सलिल बरसन लगो वसुधा लगी सुखमा लहन ॥
लहलही लहरान लागीं सुमन बेलीं मृदुल।
हरित कुसुमित लगे झूमन बिरिछ मंजुल विपुल ॥
हरित मनि के रङ्ग लागो भूमि मन को हरन।
लसत इन्द्रबधून अवली छटा मानिक बरन ॥

बिमल बगुलन पाँति मनहु विशाल मुक्तावली।
चन्द्रहास समान चमकत चञ्चला त्यों भली ॥ ८ ॥

नील नीरद सुभग सुर धनु बलित सोभा धाम।
ललित मनु बनमाल धारे लसत श्री घनश्याम ॥
कूप कुण्ड गँभीर सरवर नीर लाग्यो भरन।
नदी नद उफनान लागे लगे झरने झरन ॥ ९ ॥

रटन लागे विविध दादुर रुचत चातक बचन।
कूक छावत मुदित कानन लगे केकी नचन ॥
मेघ गरजत मनहु पावस भूप को दल सबल।
बिजय-दुन्दुभि हनत जग में छीन ग्रीषम अमल ॥ १० ॥

मारतण्ड तेज जल सागर को तपावै।
ताके समीर परमाणु उड़ाय धावै ॥
पावै प्रसङ्ग जहँ शीतल, मेघ छावै।
या भाँति ईश सब देश कृषी सिंचावै ॥
नाना प्रकार उपजैं फल धान्य होवै।
कासार कूप नद में जल भूरि सोहै ॥
सो धन्य धन्य हरि पालन शील स्वामी।
जो देत 'पूर्ण' विधि पुत्रन अन्न पानी ॥ ११ ॥

लँगोटे कसैं जाँघिये त्यों चढ़ावैं।
अखाड़े खड़े इष्टदेवै मनावैं ॥

करैं बैठकैं नेम सों दण्ड पेलैं।
घुमावैं बनेठी, गदा वार झेलैं॥
करैं बाहु को युद्ध पूरे खिलारी।
पछारैं, गिरैं, होत आनन्द भारी॥
लगे 'पूर्ण' व्यायाम में मल्ल सोहैं।
मनौ देह में स्वास्थ्य को बीज बोवैं॥ १२॥

जो पाठशाला कहुँ छाँड़ि पावैं, भीजैं, भजैं बालक शोर छावैं।
भौंरे नचावैं, चकरी घुमावैं, नारे पनारे हठकै मँझावैं॥१३॥

अवसर वर नीको 'पूर्ण' है मोद जी को।
बजत सुठ मृदङ्गा बीन सारंग चंगा॥
सरस मधुर बानी राग लालित्य सानी।
चतुर जन उचारैं मेघ बेधी मलारैं॥
मनु ऋतु बरषा की ह्वै रही देव गंगा।
उठत रुचिर तामें तान ही की तरङ्गा॥
सुरपुर सम ताके साज वा भूमि धारे।
मधुर सुर बिलोके तासु पीयूष धारे॥ १४॥

रूप मदमाती नव सुन्दरी हिंडोरे बैठि,
मधुर मनोहर मलार मंजु गावहीं।
पग सों धरा पै मारि ठोकर बढ़ावैं पैंग,
ऊँचे ह्वै गगन ओर सोई समुहावहीं॥

अहिन को भूतल सुरन को अकाश बास,
जानि कबि 'पूरन' बिचार ठहरावहीं।
टेरि टेरि नागन औ देवन की अंगनान,
गर्विता नवेली चारु चरन दिखावहीं ॥ १५ ॥

गाजैं मेघ कारे मोर कूकैं मतवारे रटैं,
पपीवृन्द न्यारे जोर मारुत जनावती।
इन्द्रचाप भ्राजै बक-अवली बिराजै छटा,
दामिनी की छाजै भूमि हरित सुहावती ॥
'पूरन' सिंगार साज सुन्दरी समाज आज,
झूलती मनोहर मलार मंजु गावती।
चन्द बिन पावस में जानि कै सुधा की हानि,
मानौं चन्द मण्डली पियूस बरसावती ॥ १६ ॥

दसन चारु प्रभा चपला लसै, असित मञ्जन श्याम घटा रसै।
वचन मञ्जु सुधा बरसो करै हरितता मन की सरसो करै ॥
चटक चूनरि है सुमनावली, कच समूह छटा भ्रमरावली।
मुकत माल बकावलि सोहनी, रुचिर गान मयूरन की ध्वनी ॥१७॥

चलत बाजत भूषन-बृन्द जो, जलद गाजत हैं धुनि मन्द सो।
बिरह बर्णन चातक बानियाँ, पिकन की धुनि नेह कहानियाँ ॥
सरस मोह बिथा तम रैन को, पवन जोर महाबल मैन को।
रहिं उमंडि नदीं अभिलास की, उठि रहीं लहरैं बहु आस की ॥

मिलन दम्पति को सुख दान जो, समय सन्धि सुफूलन साँझ को।
हृदय 'पूरन' भूरि उमङ्ग है, सकल पावस प्रेम प्रसङ्ग है॥ १८॥

पावस की पायके रसीली सुखदाई ऋतु,
भूलि दुख सगरे सँजोग सुख पावत हैं।
अङ्क में लगाय चञ्चला को घन भागशाली,
'पूरन' छिनैही छन आनँद मनावत हैं॥
हलके हृदयवारे कारे मुख लीन्हें वृथा,
हठ कै वियोगिन की बिथा को बढ़ावत हैं।
बार बार छनदा दिखाय गुहराहि मोहिं,
धुरवा घमण्डी हाय जियरा जरावत हैं॥ १९॥

जल भरी झारी कारी बादरी बिराजै ब्योम,
गरजन मन्द मन्त्र मङ्गल उचारे हैं।
छहरति दामिनि सो भाजन घुमावन में,
दमकत भूषन अमन्द दुतिवारे हैं॥
परत फुहार जल पावन झरत सोई,
पेखि कवि 'पूरन' बिचार उर धारे हैं।
प्यारी सुकुमारी की बलाय बरकावन को,
देखौ देवनारी आज करती उतारे हैं॥२०॥

सघन घटा कारी घिरि आईं लाग रही झरि जोर रे।
निस अँधियारी चमकत चपला होत महाधुनि घोर रे॥

करत शोर दादुर बन कूकैं मेघ गरज सुनि मोर रे।
मधुर मलार अलापैं कामिनि 'पूरन' बैठि हिंडोर रे ॥२१॥

नवल सुर बधू वा मैनका, मंजुघोषा,
कुसुमशरचमू वा उर्वशी 'पूर्ण' शोभा।
अहि तिय कमनीया, काम की कामिनी वा,
रजनिपति कला वा, चंचला सोभ सीवा ॥
नवरतन प्रभा, वा रूप ही की छटा है,
कमल विपिन शोभा डोलती कै धरा पै।
कल कनक लता है चारु कै चम्पमाला,
छवि उदधि रमा, कै राजती राजबाला ॥ २२ ॥

फूले चैत पलास लाल बिन मधु सखि ज्वाल दही।
माधव बिन बैसाख कठिन सन्ताप जलाक बही ॥
बाढ़्यो जेठ बियोग जरत तन मन दिन रैन सही।
छाये घन आसाढ़ आस की सघन घटा उमही ॥
सावन बरसत नीर नयन घन समता मनहु लही।
भादौं जग अँधियार श्याम बिन धीर न जात गही ॥
क्वार छाय घन सेत जरद अग विरहिन को करही।
कातिक निरमल चन्द विषम विष किरनन सुख हरही ॥२३॥

माघ सुनाये बोल कोकिला मोहन सुरति कही।
फागुन 'पूरन' काज मिलो वर प्रेम मगन दुलही ॥

अगहन पीर गँभीर लोक कुल की कछु सुधि न रही।
पूस न सीतल होत हियो जउ पाला परत मही॥ २४॥

सूहे टेसू खिले हैं सुचि सघन जोई चूनरी लाल सोहै।
बानी है कोकिला की प्रिय बदन प्रभा चन्द्रिका चारु मोहै॥
सोही कञ्जावली है कर दृग मुख की, केश भृङ्गावली है।
देखौ वर्षा समै में ऋतुपति सुखमा अङ्गनै सेवती है॥ २५॥

नवलान की प्यारी अलाप सोई, धुनि केकी कलाप सुनावत हैं।
अबला, चपला, मणि जीगन हैं, कचपुञ्ज निशा तम छावत हैं॥
बरखा के बिनोद बिहार घने, हिय 'पूरन' मोद बढ़ावत हैं।
रस मेघ, महा सुखमा नभ तें, सुख की बुँदियाँ बरसावत हैं॥२६॥

प्रमुदित चिरजीवहु सदा हे प्रिय जीवन कन्द।
जीहैं तो पुनि आइहैं जोबन तो मुखचन्द॥
सरस दृगन द्वारा कियो सुधारूप रसपान।
मदन गरल की दाह तें सोई रच्छहिं प्रान॥ २७॥

चञ्चल छली अयाना, मन तैं चञ्चल छली अयाना।
जान्यो जाहि सदा अपनो सो छिन में भयो बिराना॥
देखी सुनी न आस मिलन को चितवत ताहि लुभाना।
मन्द कुटिल बरजो नहिं मान्यो लोचन बाट पराना॥२८॥

अङ्ग सँगाती सङ्ग बात तैं कीनी करु न बहाना।
आप प्रियै मिलि तनु पीड़ित की सर्बस सुरति भुलाना॥
चपला, पवन कोकिला शावक उपमा सोउ न समाना।
चपल कृतघ्न चोर दुखदाई को मन सरिस जहाना॥२९॥

हे पञ्च-शायक मार। मत पुष्प के शर मार॥
असि गदा शूल चलाव। पुनि देखु मेरे घाव॥
हौं शौर्यधारी बीर। सन्मुख दिखाव शरीर॥
नहिं क्रूरता छबि देत। यह अतनता केहि हेत?
हर सङ्ग जब संग्राम। तू ने कियो हे काम!
तब मनुज सन्मुख आय। क्यों करत युद्ध लजाय!
मत जान तू बिधु बाल। है खौर चन्दन भाल॥
नहिं जटा मेरे शीश। मंडील आहि रतीश!
नहिं जाह्नवी की धार। हैं मुक्त हीरन हार॥
है सर्प नाहिं अनङ्ग। यह परयो शेला अङ्ग।
मैं अहहुँ राजकुमार! शिव जान मोहिं न मार॥३०॥

नारद से योगी को भुलायो तप तेज ज्ञान,
जाको परिणाम राम शोक में लखात हैं।
विश्वामित्र जू को तप कीन्हों त्यों अनंग भंग,
गौतम की अंगनै दिवायो शिला गात है॥
नीर गत तपत मुनीश को सतायो मैन,
कीन्हीं रजनीशहू पै याने बड़ी घात है।

औसर अनौसर में कौने काल कौने ठाँव,
शङ्कर के शत्रु ने करो ना उतपात है ? ३१ ॥

बालि बधवायो, दशशीश कटवायो,
तासु वंश नसवायो कौन जानत न बात है !
कृष्ण बाणासुर को करायो घोर युद्ध महा,
ऊषा-अनिरुद्ध-बिथा कहि ना सिरात है ॥
कीचक को बीर पछरायो भीमसेन हाथ,
सोचत कहानी अकुलानी मति जात है ।
कलुष कलेशन को कारन कलङ्की क्रूर,
काम को जहान में बखानो उतपात है ॥ ३२ ॥

बिप्रधर्म को भूलि तेजहत बंश लजावै,
क्षत्रिय धर्म्म बिसारि दीन ह्वै निन्दा पावै ।
वैश्य तजै जो धर्म सुखन को मूल गँवावै,
शूद्र धर्म प्रतिकूल मनुजश्रेणी तें जावै ।
सो धर्म किये ही परम सुख, सन्तन जो नित मन धर्‌यो ।
परलोक नसायो भ्रांति वश, जेहि अधर्म सपने कर्‌यो ॥३३॥

धर्म पुत्र कनकाक्ष ताहि श्री बराह मार्‌यो,
कनककश्यपहु दैत्य तासु हरि उदर बिदार्‌यो ।
रावण को श्री राम, सहित खल दल संहार्‌यो,
केशी आदिक मारि कंस कहँ कृष्ण पछार्‌यौ ॥

त्यों कियो अधर्महि कौरवन, भारत रण जूझे सकल,
है तीन काल में अहितकर, धर्म छाड़िबो एक पल ॥३४॥

गज के अंकुस हनिय, बैल को अरई दीजै,
चाबुक मारिय अश्व, कान गहि अज बस कीजै।
अद्‌भुत भावै रीति सखी रतिनायक बंकहि,
अबल सबल नरनारि सबन इक लाठी हंकहि।
जिन कठिन शरन सों शम्भु पर वार प्रबल मनसिज किये।
सोई बान हनत सो आज हा, सुकुमारी अबला हिये ॥३५॥

हरि ध्यान की आधार मंजुल मञ्जरी सत ज्ञान की।
सुख सारिनी प्रेमीन की अपहारिनी चिन्तान की ॥
हितकारिनी साधून की बिस्तारिनी यशमान की।
नहिं बस्तु गान समान है सुखदायिनी मन प्रान की ॥३६॥

भाय रही सुख छाय रही, हिय सुन्दर चन्दमुखी नवला।
न बनै उपमा शशि की रति की, सु मनौ छबि-सिन्धु कढ़ी कमला ॥
कुसुमी पर मंजुल गात लसै, मुसक्यान लखे मन जात छला।
रमनी के सुहावन पावन पै, झुकि चाहै पलोटन को चपला ॥३७॥

चिग्धरत बहु बनराज, वृक भालु व्याघ्र समाज,
'भय' राज्य रक्षण हेतु चौकी पहरुआ देत।
हुकरहिं घोर उलूक, हू हुव करैं जम्बूक,
'भय' राज-बन्दी-वृन्द, मनु गावहीं जस-छन्द !

बिकराल असित विशाल, फुंकरहिं रेंगहिं व्याल,
'भय' की मनौ सन्तान, बिहरै भयानक बान!
व्याप्यो विकट तमजाल, बन बीच सघन कराल,
भय-कीर्ति कारी घोर, छाई मनौ चहुँ ओर!
दरसै दवानल ज्वाल, मनु सजी दीपन माल,
दै जन्तु चोरन त्रास, भय करत देश निकास!
चमगीदड़हु द्रुम डार, लटके अधोमुख भार,
भय नृपति मनहु प्रचण्ड, दै रह्यौ गुनहिन दण्ड!
जो रटहिं बायस 'काँव', कह गूँज भाँई 'खाँव',
भय भूप की मनु हङ्क, छावै महान अतङ्क! ३८॥

शुभ चतुष्पद न लखात, वर विहँग-रव न सुनात।
जिमि पाप रत नृपराज, नहिं रमत सन्त समाज!
रूखे भयानक रूख, लखि प्राण जाहीं सूख,
मनु भय-प्रजा के गोल, डर सों सकैं नहिं डोल! ३९॥

महि पड़े हाड़ पहाड़, त्यों रहे सड़ बहु झाड़।
मल मूत्र पूरित गाड़, रहि गन्ध नासा फाड़।
इक तो विपिन भय खानि, अति होति तापै ग्लानि।
भय राज मनु मतिहीन, बीभत्स मन्त्री कौन! ४०॥

छूटि गयो सखि सङ्ग सखीन को, छूटि गयो सबै रङ्ग औ राग है।
खान औ पान लौं छूटि गयो, तब बापुरो बैरी कहाँ अँगराग है॥

नित्य के हास विलास छुटे सब, भाग में एक भरो अनुराग है।
प्रान को छूटिबो बाकी रहो, अहो कैसो दियो बिधि ने ये सोहाग है॥४१॥

पीतम प्रीति में पोरी परी दुति, पूरे रहैं जल सों जलजाता।
कम्पित अङ्गन रोम उठैं, सरसै तिमि स्वेद बनै नहिं बाता॥
बाल बिहाल जकी सी रहै, पिय ध्यान में लीन सबै तजि नाता।
बोरि रह्यो करुना के समुद्र में, कैसो सोहाग तैं दीन्हों बिधाता॥४२॥

तू अब भजु मन प्रभु सुखदाई।
नर तन धरि सुमिर दिवस निस।
न त अवसर चलि जाई॥

पाय परम "विवेक" पूरन चित्त धर "बैराग"।
साधु "षट सम्पत्ति" प्राणी "मोक्ष" आनँद लाग॥ ४३॥

चेतु रे चेतु दृढ़ निगम की सीख,
गहु बेग लहु रीति सुखप्रद सुहाई।
मेट दे आपको लेखु सब ब्रह्ममय,
महा भव रोग जासों नसाई॥ ४४॥

जहँ अनन्त आनन्द हित करत सन्त जन जोग,
स्वर्गहु ताके सम नहीं धन्य तपोवन लोग।
परम विशद जहँ सत्य को रहत चारु आभास,
शत सुरपुर सम्पत्ति को करत तपोवन हास॥ ४५॥

"कहु मन बम भोला बम बम बम,
शङ्कर दयाल हित प्रणतपाल शिव शिवा सहित भजु दम पर दम।
सिर सोहत पिङ्गल जटा जाल, सुच पावन गङ्ग तरङ्ग माल,
चमकत बिशाल बिधु बाल भाल दृग लाल हरन मोहादिक तम॥
भूषण कराल विकराल व्याल सुठ नीलकण्ठ उर मुण्डमाल,
वर भस्म अङ्ग राजत रसाल मृगराज छाल धारे अनुपम।
महिमा अपार संसार सार प्रभुता अपार हर निर्विकार,
मन बुद्धिपार व्यापक उदार, नित नेति नेति कह निगमागम॥
ध्यावत दिनेश बन्दत निशेश, गुण कहत शेष बिनवत गणेश,
परमेश जान जाँचत सुरेश, कहि जय महेश तरि जात अधम।
सुख ऋधि सिधि श्री सम्पत निवास, मङ्गल हुलास आनन्द रास,
सब देत 'दास' कहँ बिन प्रयास, शिव आशुतोष बिनहीं शम दम॥४६॥

सोहैं सरोज सित सुन्दर सिन्धु भाये,
नीलारबिन्द बन धौं हिम बिन्दु छाये।
हीरे विशाल वर नीलम शैल आहिं,
बूटे किधौं प्रकृति बाम सुचीर माँहिं॥ ४७॥

आवै किधौं तमहि जीतन रैनराज,
मैदान माहिं दल तासु रह्यो बिराज।
कीधौं बिरञ्चि लिखि कै महिमार्थ सार,
श्री ब्रह्म को विरद पत्र रच्यो अपार।
कै सेवती सुमन नन्दन बाग वारे,
जो सूँघि सूँघि मग में अमरीन डारे॥

माया तिया कि पिय 'पूरन' ब्रह्म काजै,
पर्य्यङ्क पै पुहुप-पुञ्ज अपार साजै।
कै रैनचन्द सुतबृन्द अनन्त प्यारे,
आनन्द धाम बिहरैं छबिवन्त वारे।
पूजै कि भक्त बर अम्बर श्री हरी को,
साजे सु दिब्य बहु दीपक आरती को॥ ४८॥

शरद निशा में ब्योम लखि के मयङ्क बिन,
'पूरन' हिये में इमि कारन विचारे हैं।
विरह जराई अबलान को दहत चन्द,
तातें आज तापै विधि कोपे दयावारे हैं॥
निशिपति पातकी को तम की चटान बीच,
पटकि पछारि अंग निपट बिदारे हैं।
तातें भयो चूर चूर उचटे अनन्त कन,
छिटिके सघन सो गगन मध्य तारे हैं॥४९॥

दृग से बदाम बर पातल कपोलन से,
आनन से राजत अनार गुलनार हैं।
उर चलदल आँगुरी अशोकपात,
रम्भा जङ्घ, रम्भापात पीठ के अकार हैं॥
सम्बुल सुकेश, समसाद चारु गात सम,
सुबरन ऐसी चम्पबेली सुकुमार हैं।

'पूरन' प्रिया को बाग लागै मोहिं प्यारो,
जामे ताहीं अनुरूप साज सोहत अपार हैं ॥५०॥

नाइन बुलाय अंग अंग उबटाय न्हाय,
जावक दिवाय पग मेंहदी रचाई है।
कज्जल कलित करि लोचन अनोखे चोखे,
बन्दन की बिन्दी बाल भाल मैं लगाई है।
चारु मखतूल ताग रुचि सों गुँधाय बेनी,
सुघर अनूप माँग मोतिन भराई है।
तारन को बाँधि कै कतार नीके तारापति,
मानहु नवीन कीन्हीं तम पै चढ़ाई है ॥ ५१ ॥

साजे आज नख सिख रुचिर सिंगार प्यारी,
अङ्ग अङ्ग भूषनन सोभा सरसाई है।
विमल बदन के समीप त्यों बिशाल,
श्याम 'पूरन' अलक की झलक छबि छाई है ॥
मुख पै सजे हैं चारु गहने प्रसूनन के,
माँगहू पै फूलन की सुखमा सुहाई है।
छाय चन्द्मण्डल को मानौ निज आनन सों,
कीन्हीं मैन सैन 'रैन' 'चन्द' पै चढ़ाई है ॥ ५२ ॥

बैठी है सिङ्गार साजि प्यारी सुखमा अगार,
अङ्ग अङ्ग भूषन बसन कीं निकाई है।

लाल जड़ी चौका बाल उर में विशाल राजै,
'पूरन' अमन्द तासु झलक सुहाई है॥
ताही पै सुमन चारु भामिनि के केसन तें,
झरत बिलोकि बेस उपमा सुनाई है।
'तम' की शरन बैठि मार मार बानन सों,
कीन्ही कुसमायुध ने भानु पै चढ़ाई है॥ ५३॥

पीतम मिलन की सोहाग भरी आई घरी,
प्यारी अनुराग भरी हिये हरखाई है।
संग की सहेलिन की मानति सकुच तौहूँ,
जानि तिन्हैं आपनी गँवाई दुचिताई है॥
यदपि मयङ्कमुखी करति अनेक शङ्क,
देत यह अवसर न एक सो जनाई है।
'पूरन' दरस अभिलासी ह्वै रही है बाल,
कीन्हीं रति राज आज लाज पै चढ़ाई है॥ ५४॥

आज कालिन्दी के तीर मज्जन के काज
बीर जुरी गोप-गोपिन की भीर मनभाई है।
स्यामा को बसन्त की अवधि समुझाइबे को,
'पूरन' बिहारी तहाँ कीन्हीं चतुराई है॥
बन्दना के ब्याज डारी अंजली प्रसूनन की,
प्यारी की स्यामजल पै लखी सो सुघराई है।

मानौ निज मीत ऋतुपति को समीप जानि,
कीन्हीं रतिपति रसपति पै चढ़ाई है ॥ ५५ ॥

पीय पाय परजङ्क पर रखियो मुख पट गोय।
मत कहुँ भूलै तन सुरति चारु बदन बर जोय ॥
दृग सर जन हिय गाड़ियो अति कठोर यह रीति।
रति पति सेवन में सदा लैये उर सुठि नीति ॥ ५६ ॥

जादू भरी चितौन चितै जो पान लगायो।
वस करिबो हित मोहिं प्रिया ने तौन खवायो ॥
किधौं बिरह बिष दग्ध जानि प्रेमी को अन्तस।
जीवन औषधि दई सहित अनुपान रूपरस ॥
सत प्रेम जानि अति कठिन धौं करि आदर को मिस नयो।
पूरन अखण्ड अनुराग हित तिय प्रबीन बीड़ा दयो ॥५७॥

अद्भुत डोरी प्रेम की जामें बाँधे दोय।
ज्यों ज्यों दूर सिधारिए त्यों त्यों लाँबी होय ॥
त्यों त्यों लाँबी होय, अधिकतर राखै कसिकै।
नेह न्यून ह्वै सकत नेक नहिं दूरहु बसि कै ॥
बिधिना देत बिछोह कहूँ तासों कर जोरी।
रखियो छेम समेत प्रेम की अद्भुत डोरी ॥ ५८ ॥

प्रेम सुमग में परि गयो विरह सिन्धु गम्भीर।
नाव दया है रावरी पहुँचावन को तीर ॥

पहुँचावन को तीर तुमहिं समरथ सुखरासी।
मैं अबला बिन वित्त बिना दामन की दासी॥
मेरो है न अधार दूसरो तुम बिन जग में।
दीजौ तातें साथ प्रान पति प्रेम-सुमग में॥ ५९॥

कन्दरप ज्वालन की तपिये अधूम धूनी,
चन्द्रमुखी ध्यानही अराधन बिधान है।
सुमिरन मन्त्र जाप चिन्ता हरि-चिन्तन है,
राग बाग त्याग षट सम्पति समान है॥
मिलन सुआस सिद्ध आसन लगैये सठ,
स्वप्न को दरस त्यों समाधि सुखखान है।
देत गति योगिन की 'पूरन' वियोगिन को,
बिरह महन्त की अनोखी यह बान है॥ ६०॥

भुलाने विषय भोग में भूप दिये हैं धर्म कर्म बिसराय।
बितावैं सुख साधन में काल, प्रजा की सुध वे लेहिं बलाय॥
नीति की कथा न भावै नेक अधम कुटनी के बैन सुहात।
दरस सज्जन को सुखद न होत निरखि गनिका को रूप लुभात॥
देव सन्तन के चरित विहाय पढ़त पापिन के असुचि प्रसङ्ग।
साधु-सङ्गति ते वञ्चित हाय, नीच भँडुअन को राखत सङ्ग॥
पराक्रम विद्या तपविज्ञान न भावै सीखैं दुष्टाचार।
बढ़े हैं कलजुग में भूपाल नराधम भूपति-कुल-अङ्गार॥६१॥

बीर धावैं ललकार होय धौंसा की धुकार,
भिरैं भट्ट बार बार माचै घोर घम्मसान।
कटैं मुण्डन पै मुण्ड परैं रुण्डन पै रुण्ड मरैं,
झुण्डन में झुण्ड झर बानन पै बान॥
मचै बैरिन मझार शोर जोर हाहाकार गिरैं,
घायल चिग्घार भागैं कायर लै प्रान।
करूँ धावे रणभूम दै दै कौवे घूम-घूम,
मद बैरिन के गूम करूँ घूम बेप्रमान॥६२॥

बड़े लड़ैया कञ्चनपुर के रस्ता चलत बढ़ावैं रार,
हियाँ की बातैं हीईं रहि गईं अब आगे के सुनौ हवाल।
आय गई बिरिया मड़ए की अब भैया रे रचौ बियाह,
लै लै फौज लड़ै का धाये उमहे बड़े बड़े सरदार॥
गरज गरज कै डङ्का बाजैं आये धरती धमक सिपाह,
कौन बीर अब आगे आवैं पियो दूध जिन माता क्यार।
बानन पाटि काटि दल डारौं औंर देउँ भालन कै मार,
धँस धँस धमक बजावत धौंसा झण्डा गाड़ देउँ मैदान॥
बड़े घमण्डी राजा मारौं अण्डबण्ड सब देउँ भुलाय,
दहिने रहु तू आदि भवानी कुँवरि बियाहि घरै लै जाउँ।
कड़बड़ कड़बड़ घोड़े दौड़ैं तड़ तड़ झड़ झड़ बजैं निशान,
लपलप लपलप तेगा लपकैं सर सर सर सर बरसैं बान॥
धावैं लै लै पटा, बनेठी धर धर धमक पछारैं ज्वान।

सूरन के मन उमगन लागे कूरन के मुरझाने प्रान ॥
नदी बहि गई तहँ लोहू की तिन मा भूत परेत किलहाँय ।
ताल ठोंक कै विक्रम गरजैं कायर भागैं पीठ दिखाय ॥
जिनकी पीठ हाथ धर सीतल कीन्हों पच्छ सारदा माय ।
तेई जीत लौट के आये तिन घर बाजत अनँद बधाय ॥
नागड़ धिन्ना नागड़ धिन्ना नागड़ धिन्ना नागड़ धिन्ना ॥६३॥

एकन ते एक बली तेजसी समर धीर,
बीर जब धावैं भरे साहस गुमान में ।
तृन के समान निज प्रान बलवान लेखैं,
राखैं ना तनक नेह तनय तियान में ॥
रिपुन समूह सामने को होत बाँको समै,
तीन में तें एक जहाँ होनहार आन में ।
भागैं ते कहावैं कूर जीतैं नाम पावैं सूर,
मरैं ते सिधारैं सुरपुर को बिमान में ॥६४॥

रुद्र सम देखत स्वरूप दोऊ बीरन को,
सिंहहु डराय कै सियार लौं दबकि जात ।
सुनिकै अतङ्क भरी तिनकी प्रबल हंक,
जानि कै समीप मीच बैरी बङ्क भहरात ॥
भानु से प्रतापवा चन्द्र से सुजसमान,
भानु औ प्रताप तेज 'पूरन' प्रबल गात ।

सेना चतुरङ्गिनी सँवारि चले युद्ध काज,
बिजयनगर के पताका तुङ्ग फहरात ॥६५॥

बिजयनगर की प्रजा अमर भूपति की सेना।
जिनके सम रणधीर जगत में कोऊ है ना॥
धर्म पच्छ के हेतु देश अमरावति धावैं।
जीति सहज संग्राम कलुष के अङ्क मिटावैं॥
सो घालि छली दिकपाल के काटि रिपुन की अली के।
रुधिर पियहिं रणथली में इन्द्रबली की नली के॥६६॥

धावौ रे समरवीर गाजौ रे विकट वीर,
वैरिन के अंग खीर करहू पछार झार।
मारौ रे सघन तीर काटौ रे रिपुन भीर,
छेदौ रे शरीर हूल हूल शूल धारदार॥
डारौ रे सबन चीर नेक न बिचारौ पीर,
औसर मिलै ना बीर बाजिबे कौ बार-बार।
शत्रु हिये हार हार भागे शस्त्र डार डार,
धाव-धाव मार-मार काट-काट फार-फार॥ ६७॥

कुञ्जरन झुण्डन ज्यों केहरी गरजि गुञ्जि,
चीर अरि भीर वीर तैसे चित चोपे हैं।
शत्रुन कटक काटि काल के कलेऊ दै दै,
रुण्ड मुण्ड सगरी समरभूमि तोपे हैं॥

बानन की बरखा कृपानन की घमासान,
भालन की वारन न काहू पग रोपे हैं।
भागहु रे बैरियो बचाओ निज प्रानन को,
भानु औ प्रताप आज दोऊ रन कोपे हैं ॥ ६८ ॥

अरे! तू अधम काल के मित्र! जगत के शत्रु! नीच संग्राम!
अरे धिक्कार तोहिं सौ बार! अमङ्गल! दुःखद! पातक-धाम!
सघन-सुख-पङ्कज-पुञ्ज- तुषार! देश - उन्नति - तरु - कठिन-कुठार।
शान्ति बन दहन प्रचण्ड कृशानु! भयानक हिंसा वंश अगार!
देश सम्पत्ति कृषी पै हाय! परै तू टूटि गाज के रूप।
लोकद्रोही! धिक! धिक! धिक तोहिं! युद्ध! रे व्याधि देश के भूप!
नीच नृप के अघ के परिणाम! देश दुष्कर्म विपाक स्वरूप।
प्रजामुद कुसुमाकर को ग्रीष्म! अरे दारुण सन्ताप अनूप ॥६९॥
सहस्रन घायल डारे वीर कराहैं कलपि कलपि बलहीन।
सहस्रन मुर्च्छित भरहिं उसास जियन को घटिका द्वै वा तीन ॥
सहस्रन जूझि गये बलवान सिपाही समरधीर सरदार।
सहस्रन गज तुरङ्ग भे नष्ट झेलिकै बानन की बौछार।
सहस्रन धामन में कुहराम मच्यो है सकरुन हाहाकार।
चहूँ दिश शोकावलि सरसात सहस्रन उजरि गये घर बार।
सहस्रन बालिक भोरे दीन भये असहाय हाय बिन बाप।
बिलख लखि लखि कै तिनकी आज हिये में होत महा सन्ताप ॥७०॥
मृतक सो परीं महीतल माहिं, दया के योग्य भरीं सन्ताप।
कबहुँ जो होवै मुरछा दूर, करैं तब अतिशय घोर विलाप—

कहाँ तुम गये प्रान-आधार ! जगत जीवन के शोभा रूप ?
गये कित स्वामी! सुख के धाम! बोरि दासी को दुख के कूप ॥७१॥

हाय ! कहँ गये हमारे छत्र ! छाँड़ि औचकहि हमारो साथ !
हाय ! सुरनगर बसायो जाय ! निठुर ह्वै करि हम दुखिन अनाथ,
हमारे चूड़ामणि सिर मौर ! हमारे पति, सम्पत्ति, सोहाग,
गये प्रिय ! कित शृंगार नसाय ? अरे निर्दयी दई ! हा भाग !
करौ हे पीतम ! सो दिन याद, जबै तुम गह्यौ हमारो हाथ ॥७२॥

कह्यौ करि साखी देवहि आप, 'जनम लौं देहैं तुम्हरो साथ',
प्रानप्यारे ! क्यों मुख को मोरि, गये तजि भला प्रतिज्ञा तोरि ?
चले इत आवौ हाय बहोरि, बिनै है चरन परसि कर जोरि,
पिया ! शय्या पर सोवनहार ! आज तुम परे कठिन रनखेत ?
कन्त ! अँगराग लगावनहार, धूरि तन भरी भूरि केहि हेत ?
प्रानवल्लभ ! नित रहे दयाल, सही नहिं कबहुँ हमारी पीर,
आज लखि हमै हाय ! बिलखात, न पोंछत काहे नैनन नीर ?॥७३॥

कबहुँ नहिं कियो कंत, आलस्य, जगत हे नेकहि खटका पाय ।
निपट बेखटके सोवत नाथ ! आज की कैसी निद्रा हाय ?
कबहुँ जो जात हुते परदेस आप, वा, खेलन काजैं सिकार ।
होत हो दारुन हमै कलेस, रैन दिन प्रानन सालनहार ॥
रहति ही यद्यपि पूरी आस, कछुक दिन बीते ऐहै कन्त ।
तऊ अनुरागी चित को हाय, बेदना होतहि हुती अनन्त ॥

हाय ! सोइ पीतम प्रेमनिधान, आज तुम गये नहीं परदेस।
गये तुम सुरपुर हमैं बिहाय, सदा को, हाय अपार कलेस ॥७४॥

नाथ ! जो बहुरि न आवौ पास, करौ तो एतोही उपकार।
बुलावौ हमको ही निज पास, होय काहू विधि बेड़ापार ॥
नाथ ! तुम बिना निपट अँधियार, भयो सूनों दुखप्रद संसार।
होत प्रानन छिन छिन दुखदाय, अधम माटी को कारागार ॥
कहाँ लौं बरनौं जाय प्रलाप, दुखारी बिधवागन को हाय।
बिसूरत ही तिनको सन्ताप, सहज ही हिरदे फाटी जाय ॥७५॥

अरे ! संग्राम ! घृणा के धाम ! धर्मद्रोही, अपकारी क्रूर।
रुधिर के प्यासे ! अरे पिशाच ! उपद्रव करन ! धूर्त भरपूर !
जगत में तू ही बार अनेक, प्रकट ह्वै किये घने उतपात ॥ ७६ ॥

भरे इतिहासन में बृत्तान्त, तिहारे दुर्गुण के विख्यात।
सुरासुर समर महान प्रचण्ड, भये भयकरण अनेकन बार।
भई तिनमें हिंसा विकराल, अपरिमित सृष्टि भई संहार।
परशुधर क्षत्रियगण के युद्ध, नष्ट कर दीन्हें अगणित वंश।
बली बर भूपति संख्यातीत, प्रतापिन लह्यो सहज विध्वंस ॥
राम-रावण-संग्राम प्रसिद्ध, उपस्थित भयो भयानक घोर।
अपरिमित बलधर कला प्रवीण, नसे योधा विक्रान्त अघोर ॥
लड़े त्यों जरासिंधु यदुवंश, भयो हरि-बानासुर-संग्राम।
भयङ्कर भयो महा बिकराल, महाभारत रण हिंसाधाम ॥ ७७ ॥

रूम यूनान मिश्र वा रोम स्पेन जर्मनि वा इंग्लिस्तान।
आस्ट्रिया फ़्रांस देश वा होय, अफ़रिका अमेरिका जापान ॥
सबन को जेतो है इतिहास, होय सो नूतन वा प्राचीन।
ठौर ही ठौर भरी तेहि माहिं, युद्ध की कथा महा दुखलीन ॥
अरे तू जगत उजाड़नहार, अकथ दुखकरन ! अपावन ! भीम !
कहाँ लौं बरनूँ हे खलराज ! तिहारे निन्दित कर्म असीम ? ॥७८॥

धन्य जगबन्दन भैभञ्जन अनन्दकन्द,
सङ्कट-निकन्दन, अनंत रूपधारी धन्य !
शेष शिव शारद सनातन शुकादि सेव्य,
संत सुर सुखद सहाय असुरारी धन्य !
आदि अज अजर अगोचर अनादि एक
अमित अनेक ब्रह्म 'पूरन' मुरारी धन्य ॥७९॥

"वर्ष बितीत भयो रहिबे महँ, पै हियरे न दया कछु आनी।
ढूँढ़ि फिरो द्रुम डारन डारन" पीव कहाँ यह बोलत बानी ॥
चातक मेघन सों कवि सेवक, भाखत यों निज रामकहानी।
"एकहि बूँद सों काम हमैं, घन काहे इतो बरसावत पानी" ॥८०॥

"बूड़ि मरै न समुद्र में हाय तौ नाकही नेक निछोछैं डुबावैं।
का तजि लाज गराज किये, मुख कारो लिये इत हीं उत धावैं ॥
नारि दुखारिन पै बजमारे, वृथा बुँदियान के बान चलावैं।
बीर हैं तौ बलबीरहि जाय कै बीर बली धुरवा धमकावैं" ॥८१॥

कारी जामिनी है अँधियारी चहुँ ओर छाई,
सघन घटा है भूरि दामिनी विभास है।
तारापति पेखन की चरचा चलाई कहा,
करत न तारा जहाँ एकहू प्रकास है॥
'पूरन' छपाकर के प्रेमी निज नैनन को,
देत दुख काहे? दूर सुख को सुपास है।
पावस की ऋतु है, अमावस की रात तापै,
दुखिया चकोर! काहे ताकत अकास है॥ ८२॥

करिहैं न बक बक्र धरिहैं न बक-ध्यान
चाल सोई चलिहैं जो चलत सदा से हैं।
तजिहैं न टेक छीर-नीर के विवेक वारी,
ऐसे कुल कीरति विमल के उपासे हैं॥
मानसरवारे कुञ्ज मुकता चखनहारे,
'पूरन' जहान जस जिनके प्रकासे हैं।
झीलन में झाँकि झख मारिहैं दुकाल में,
न मरत मराल बरु भूखे अरु प्यासे हैं॥ ८३॥

आटिकाँ विपिन लागे छावन रँगीली छटा,
छिति सों सिसिर को कसाला भयो न्यारो है।
कूजन किलोल सों लगे हैं गोल पंछिन के,
'पूरन' समीरन सुगन्ध को पसारो है॥

लागत बसन्त नव सन्त मन जाग्यो मैन,
देन दुख लाग्यो विरहीन बरियारो है।
कुञ्जन निकुञ्जन में कञ्जन के पुञ्जन में,
गुञ्जत मलिन्दन को वृन्द मतवारो है ॥ ८४ ॥

कोल्हू को कठिन भार काठ औ कबार तापै,
काँधे पै सँभार धायो तिन भुस खाय खाय।
सूधो चलतो तौ होतीं मञ्जिलें विपुल,
पार नन्दीपुर जाय हरखातो सुख पाय पाय ॥
होनहार नाहीं इन तिलन में तेल नेक,
'पूरन' सचेत होहु चित हित लाय लाय।
अजहूँ चखन खोलि सोच तौ अनारी भला,
केती गैल काटी बैल रातौ दिन धाय धाय ॥ ८५ ॥

डरपोकपने की तजी नहिं बानि, मँजे छल छिद्र विधानन में।
बदली नहिं बोली औ बानी कछू रहे पूरे भयानक तानन में ॥
सुचि भोजन की रुचि कीन्ही नहीं शव खाइबो सीखो मसानन में।
करतूती कहो भला कौन करी, जो बसे तुम स्यार जू कानन में ॥८६॥

माता के समान पर-पतनी विचारी नहीं,
रहे सदा पर-धन लेन ही के ध्यानन में।
गुरुजन पूजा नहीं कीन्हीं सुच भावन सों,
गीधे रहे नाना विधि विषय विधानन में ॥

आयुस गँवाई सबै स्वारथ सँवारन में,
खोज्यो परमारथ न वेदन पुरानन में।
कानन के काचे अजौं मोहिं मरैं तानन पै,
कीरति कुरङ्गन कमाई कौन कानन में॥ ८७॥

'पूरन' सप्रेम जो न लेत मुख राम नामु,
टीका अभिराम है निकाम तासु आनन में।
उर मैं नहीं जो हरिमूरति बिराजी मंजु,
कौन महिमा है कण्ठमालन के दानन में॥
आसन को नेम बिन बासना नमाये मिथ्या,
बिन श्रुति ज्ञान होत मुद्रा बृथा कानन में।
चाहिए सुप्रीति धर्म कर्म के विधानन में,
रहिए मकानन में चाहे घोर कानन में॥ ८८॥

चन्द्रमुखी हीरन भूखन अमन्द धारे,
मोतिन की नारी वारी सारी चारु धारी है।
जोबन की जोति तैसी रूप की छटा है बेस,
जाति ब्रजचन्द सों मिलन हेतु प्यारी है॥
'पूरन' जू जामिनी में कौतुक अनोखो,
भयौ जबै कुञ्जबन ह्वै सिधारी सुकुमारी है।
भोर जानी चोरन ने मोरन तड़ित जानी,
समुझी चकोरन ने चन्द उजियारी है॥ ८९॥

ये पुष्पाभिसार कैसे पढ़न पावैंगे,
अबै तो केवल शुक्लाभिसारिका भई है,
दिवाभिसारिका कृष्णाभिसारिका हरिताभिसारिका
अरुणाभिसारिका पीताभिसारिका दीपमालिकाभिसारिका
पहिले हो जायगी तब तौ पुरुष फटकन पावैंगे ॥ ९० ॥

तुम्हारे अदभुत चरित मुरारि ।
कबहूँ देत बिपुल सुख जग में कबहुँ देत दुख भारि ॥
कहुँ रचि देत मरुस्थल रूखो कहुँ पूरन जलरास ।
कहुँ ऊसर कहुँ कुञ्ज विपिन कहुँ कहुँ तम कहूँ प्रकास ॥ ९१ ॥

लाली जेहि बाला के अधर की अमन्द चारु,
बिम्बाफल बिद्रुम बन्धूक को लजावती ।
जाके मृदु मधुर रसोले प्रिय बैनन की,
बीना, पिकी कोऊ समता को नहीं पावती ॥
प्रेम सों पिया सों बतरात सोई चन्दमुखी,
सुखमा बिलोकि मन उपमा सुहावती ।
छाई चन्द मण्डल के बीच अरुनारी घटा,
मन्द मन्द 'पूरन' पियूस बरसावती ॥ ९२ ॥

अधर जपा लोचन कमल सरस गुलाब कपोल ।
नव अगस्त नासा अमल दसन कुन्द अनमोल ॥
इक चम्पक द्रुम में खिले विविध सुमन रुचिसार ।
मधुप भागशाली करत सबको रस सञ्चार ॥ ९३ ॥

चन्द को प्रभात दिनेश बनाऊँ।
सुन्दर चन्दमुखी आनन पै बिमल गुलाल लगाऊँ ॥
काम-कमान कुटिल-भ्रकुटिन रँगि सुरधनु गर्व लचाऊँ।
रँगि कमनीय कपोल-गुलाबन गुलनारन पजराऊँ ॥ ९४ ॥

नासा-तिल-प्रसून करि रञ्जित किंशुक-दुति दरकाऊँ।
चिबुक सेब रँगि लाल रसालन द्रुम तें पतित कराऊँ ॥
मंजुल अधर-प्रबाल लाल करि बिम्बा फलन पकाऊँ।
रँगि अभिराम बदाम-नयनपुट अरुन कमल सकुचाऊँ ॥९५॥

पूरन बाम-ललाम-अंग पर, ललित लालिमा छाऊँ।
आज सुखद अनुराग-प्रभा सम रूप-छटा दरसाऊँ ॥ ९६ ॥

बिलसि रह्यो अनुराग आज सरसै आनन्द अपार।
धनि धनि मेरो सोहाग, आज सरसै आनन्द अपार ॥ ९७ ॥

प्रेम सिन्धु पीतम रोरी, मिस पूरि दियो अनुराग चहूँ दिस।
'पूरन' मेरो भाग! आज सरसै आनन्द अपार ॥ ९८ ॥

सुन्दर-दरपन-दीपति दीसै दसहु दिसान।
मनहु मनहिँ मोहत सुमुखिन के मुख दुतिमान ॥
पहरैं चवरैं मनों मनोहर कुन्तलभार।
बनी सुनगरी नवल-नागरी सोभा-सार ॥ ९९ ॥

लसत सरासन बङ्क भुवन से सोभावान।
अनियारे नैनन से पैने पेखे बान ॥

मंजु माँग सी चन्द्रहास दरसैं अभिराम।
बनी सुनगरी नवल नागरी सुखमा धाम ॥ १०० ॥

ग्रीवा से कल कम्बु बाहु से मृदुल मृनाल।
अमल आँगुरिन लों अशोक के परन रसाल ॥
कनक कुम्भ कमनीय समुन्नति उर के ठाम।
बनी सुनगरी नवल नागरी सोभाधाम ॥ १०१ ॥

सघन सुजंघन ऐसी कदली खम्भन माहिं।
छबि है, रम्भा-पात पीठ सम सुन्दर आहिं ॥
रङ्ग रङ्ग के रुचिर पताके चीर समान।
बनी सुनगरी नवल नागरी सोभा खान ॥ १०२ ॥

छावैं छटा छबीले बहु सरसीले फूल।
भासी सुन्दरीन की हासी मनु छविमूल ॥
बीन बजनि मनरञ्जन मानौ मधुर सुबैन।
बनी सुनगरी नवल नागरी सुखमा ऐन ॥ १०३ ॥

कुञ्जर गति मतवारी प्यारी चाल सुमन्द।
बर बिलास पूरन पुरवासिन को आनन्द ॥
आहा कैसी मनोरमा है छटा अपार।
बनी सुनगरी नवल नागरी सोभागार ॥ १०४ ॥

करु गौने के साज हरि भजना करु गौने के साज।
अच्छे अच्छे फुलवा बीन री मलिनिया गुधि लाव नीको नीको हार।

फुलन को हरवा गोरी गरे डरिहौं सेजिया मा होय रे बहार ॥
हरि भजना करु गौने के साज ॥ १०५ ॥

चैतमास की सीतल चाँदनो रसे रसे डोलत बयार ।
गोरिया डोलावै बीज़ना रे पिय के गरे बाहीं डार ॥
हरि भजना-पिय के गरे बाहीं डार हरि भजना०
बागन माँ कचनरवा फूले बन टेसुवा रहे छाय ।
सेजिया पै फूल झरत रे जबहीं हँसि हँसि गोरी बतराय ॥ हरि०,
हँसि हँसि गोरी बतराय—हरि भजना० ॥ १०६ ॥

उड़त गुलाल लाल बादर सो छाये नभ,
दुन्दुभी गराजनि सुरङ्ग बरसत है ।
कञ्चन की पिचकी चमक रहीं चञ्चला सी,
केसर की कीच हाट बाट सरसत है ॥
मधुर धमार धुनि चातक मयूरन की,
पवन अनङ्ग अङ्ग अङ्ग परसत है ।
बरस अनन्द की नवीन मनभाई आज,
कीधौं ब्रजमण्डल में फाग दरसत है ॥ १०७ ॥

मङ्गल की गुरु पै परी है प्रभा सुन्दर ये,
सुबरन पात पै छटा है किधौं लाल की ।
सोरहू कलानयुत 'पूरन' कलानिधि पै,
आतप अरी धौं बाल सविता बिसाल की ॥

रङ्ग मिस कीरति किसोरी के सुहाग पर,
कीधौं अनुराग छटा छाई है गोपाल की ।
चम्पक पै लालिमा जपा की लसैं कीधौं,
गुप्त गोरे गोल गालन पै गरद गुलाल की ॥ १०८ ॥

सीतल सुगन्ध सनी पौन बहै मन्द मन्द,
फूले हैं पलास आम बौरे मन भाय रहे ।
बिकसे गुलाब कुन्द सेवती चमेली बेला,
सघन सरोजन पै भँवर लुभाय रहे ॥
कोकिला कुहूँकै मदमाती डार डारन पै,
सारिका शुकी के बोल मधुरे सुहाय रहे ।
भूषन बसन्त माहिं बसन बसन्ती सजे,
प्रेमी जन मुदित बसन्त राग गाय रहे ॥ १०९ ॥

भेटत भुज भरि भरि पिय प्यारी 'पूरन' प्रेम उमङ्ग री ।
जय जय कहत सुमन सुर बरखत भींजे मोद तरङ्ग री ॥११०॥

वारिज-वन विकसित विमल-नीर ।
लहरात ललित लहि लहि समीर ॥
नव तरुन मनोहर अरुन-रङ्ग-सरसी सुगन्ध मारुत प्रसङ्ग ।
जुरि मधुप वृन्द करि करि उमङ्ग-मकरन्द हेतु झुमिरत अधीर ॥१११॥

'पूरन' राजत नव भानुराज लखि खिली सरोजन की समाज ।
मनु वरुन मित्र के दरस आज लहि सहस दृगन पुलकत शरीर ॥११२॥

वन्दिय पद सरोज सन्तन के ।
मधुप सेवकन के सुखदायक, सीतल समन सकल तापन के ॥
सुचि रज जिनकी तमहि नसावत, भक्तन चित सत को सरसावत ।
'पूरन' बारम्बार वारिये, सहस गुच्छ सुरतरु सुमनन के ॥११३॥

आये हैं चितधारि भूरि करना श्री योगिराजेश्वर ।
लाये हैं सँग में पवित्र जस की साधून की मण्डली ॥
छाई है सुखमा अपार उनकी, यों रङ्गशाला लसै ।
शोभा है मनु आज शान्त रस की शृङ्गार के धाम में ॥११४॥

लखि के बहु तुङ्ग ध्वजा गन को, अनुमान यही उपजै मन में ।
धरनी रसना करि आज घनी, सुख बात सुनावति देवन को ॥११५॥

श्री विष्णु मुरारी शिवा पुरारी, गिरा रमन विधि कमलासन ।
गणराज गजानन बिघ्न बिनासन, कीजै मङ्गल अनुशासन ॥
तिमिरारि दिवाकर चन्द्र निशाकर, रत्नाकर सरिता गिरिवन ।
नित मङ्गल करिए सब दुख हरिए, सदा सकल सन्ताप समन ॥११६॥

मुनि देव दनुजवर गुह्यक किन्नर, सिद्ध नाग गन्धर्व नितै ।
कीजै कर छाया करि करि दाया, सबै कृपा की कोर चितै ॥
पावक करु मङ्गल नभ जल, मङ्गल पवन धरा करिए मङ्गल ।
निसि दिन नव मङ्गल दस दिसि, मङ्गल ईश सदा करिए मङ्गल ॥११७॥

सुमति सुखद दीजै फूट को लोग त्यागैं ।
कुमति हरन कीजै द्वेष के भाव भागैं ॥

तजि कुसमय निद्रा चित्त सों चेति जागैं।
विषम कुपथ त्यागैं नीति के पंथ लागैं ॥ ११८ ॥

तन्द्री त्यागैं लहि कुशलता होहिं व्यापार नेमी।
सीखैं नीकी नव नव कला होहिं उद्योग-प्रेमी ॥
पूरे रूरे नियम बिधि सों स्वस्थता के निबाहैं।
उत्कण्ठा सों दिवस निसहूँ देश की वृद्धि चाहैं ॥ ११९ ॥

पावैं पूरी प्रतिष्ठा कविवर जग के शुद्ध साहित्य-ज्ञानी।
होवैं आसीन ऊँचे सुजन विदित जे देशसेवाभिमानी ॥
पीड़ा दुर्भिक्षवारी जुग जुग कबहूँ प्रान्त कोऊ न पावैं।
दीर्घायू लोग होवैं तिन ढिग कबहूँ रोग कोऊ न आवैं ॥१२०॥

सत्सङ्ग सन्त-सुर-पूजन, धेनु-प्रेम,
श्री-राम-कृष्ण-चरितामृत - पान-नेम,
सौजन्य-भाव, गुरु सेवन आदि प्यारे।
सम्पूर्ण शील शुभ पावहिं देश वारे ॥ १२१ ॥

अन्याय को अङ्क कहूँ रहै ना। दुर्नीति की शङ्क कहूँ रहैना ॥
होवै सदा मोद बिनोदकारी। राजा प्रजा में अनुराग भारी ॥१२२॥

समस्त वर्णाश्रमधर्म मानैं। सदाहि कर्तव्य-प्रधान जानैं ॥
जसी तपस्वी बुध वीर होवैं। बली प्रतापी रणधीर होवैं ॥ १२३ ॥

लक्ष्मी दीजै लोक में मान दीजै। विद्या दीजै सभ्य सन्तान दीजै ॥
हे हे स्वामी प्रार्थना कान कीजै। कीजै कीजै देश कल्यान कीजै ॥२४॥

——

धाराधर-धावन

तोमें दामिनी है चारु कामिनी बिराजै उतै,
तोमें सुरचाप उत चित्र रंगवारे हैं।
मधुर गराज तोमें गायन के काज तहाँ,
सुन्दर मृदङ्गन के सब्द होत प्यारे हैं॥
तोमें जल-जाल थल मनि के बिसाल तहाँ,
तेरे सम तिनके सिखर तुंग भारे हैं।
अलका पुरी के दिव्य धामन में धाराधर,
एते साज तेरी तुल्यताई के निहारे हैं॥ १॥

कर में कमल, कुन्द-कलिका हैं अलकन में,
लोध को पराग ओप आनन बढ़ावै है।
कुरबक बेस केस पास माहिं भासमान,
कानन सिरीस को प्रसून चारु भावै है॥
अम्बुधर! तेरो उपजायो त्यों कदम्ब बर,
छबि अवलम्ब माँग मध्य में सुहावै है।
सुमन सिंगार तहाँ नागरी नबेलिन को,
सदा षटऋतु की बहार दरसावै है॥ २॥

बारौ मास तामें मंजु फूले द्रुम-पुंजन में,
भृङ्गन के बृन्दन को गुञ्जन सुहावै है।

साजे रहैं तालन की सुखमा सरोज-जाल,
सोभा त्यों मरालन की माल सरसावै है ॥
पालतू कलापिन कलाप बाँकी बानिक सों,
ग्रीवा को नचाय नाचि आनँद बढ़ावै है।
लेस अँधियारी को न होवे बेस जामिनी को,
'पूरन' प्रकास नीको चाँदनी को छावै है ॥ ३ ॥
केवल अनन्दवारे अँसुवा निहारे तहाँ,
दुःख की निसानो कहुँ नेक न लखानी है।
ताप तहँ देखी बस पाँचसर आँच वारो,
जानी जासु औषध बिलास सुखदानी है ॥
मान के सिवाय है बियोग को न जोग दूजो,
'पूरन' जो रीति प्रीति नीति की बखानी है।
बैस न दिखानी ह्याँ जवानी के सिवाय दूजी,
ऐसी मोद अलका की राजति राजधानी है ॥ ४ ॥
चन्द मनि मण्डित अमन्द मन्दिरन माहिँ,
तारन के बिम्ब फूल भासत बिसाला हैं।
जैसी मन्द-मन्द घन! घन कैं तिहारी घनी,
तैसी तहाँ ठनकैं मृदङ्गन की आला हैं ॥
सङ्ग नव बामा लसै रूपरस धामा चारु,
सुख के सकल साज सोहत रसाला हैं।
"रतिफल" नामधारी रति परिनामवारी,
कल्पबृच्छ हाला के पियत यच्छ प्याला हैं ॥ ५ ॥

करि मनुहारी देवताहू जाहिं वारी ऐसी,
रूप उजियारी छबिवारी सुकुमारी हैं।
धूप के समै में सुरद्रुमन समूह छाँह,
सुरसरि तीर सीर सेवतीं मखारी हैं॥
आवै जो समीर देवगङ्गा को परसि नीर,
ताके तन लागे मन पावैं मोद भारी हैं।
हेमवारी रज में मुठी सों करि मेल प्यारी,
खेल मनि-खोज वारो खेलती कुमारी हैं॥ ६॥
तहाँ रसवन्त कन्त प्रेम बस आतुरी सों,
चातुरी सों नीबी छोरि अम्बर छुटावै हैं।
तब नवजोबना सुरङ्ग अधरानवारी,
प्यारी उजियारी में बिबस ह्वै लजावै हैं॥
ताही तें बिसाल मनिदीपन बुझाइबे को,
भोरी नवबाल यों उपाय ठहरावै हैं॥
ताकि ताकि तिन पै चलावैं मूठ कुंकम की,
रतन प्रभान को बुझाय पै न पावै हैं॥ ७॥
तहाँ मौन भेदी पौन दूती की सहाय पाय,
तोसे मेघ केतिक अटान बीच रहि रहि।
चित्रर्न की अवली बिचित्र अलबेली तिन्हैं,
रसमई बुन्दन बिगारैं मन्द बहि बहि॥
याही अपराध सों असेस पुनि कै अँदेस
करिकै कपट भेस चातुरीन गहि गहि।

निसरि पराय जात राह सों झरोखन की,
छिन्न भिन्न ह्वै कै अरु धूम रूप लहि लहि ॥ ८ ॥
आधी राति बीते घन पाँति जब दूर होति,
छावत अमन्द नभ चन्द उजियाला है।
मैनरस बाढ़े गाढ़े पिय के अलिंगन सों,
अंग अंग सिथिल सुहाति प्रति बाला है॥
चन्द मनि माला चारु उर में बिसाला बर,
चाँदनी में द्रवत स्रवत बुन्द जाला है।
हीतल सुखद मंजु सीतल बिसद सोई,
तुरत निवारि देत सुरत कसाला है॥ ९ ॥
निधि अभिराम धाम जिनके रहति पूरी,
बिबिध बिलास बर नित ही अधीन हैं।
लोग अलका के रस ऐन रस बैन राते,
लीन्हें निज सङ्ग जो बिबुध कञ्चनीन हैं॥
सुभग अराम जौन चैतरथ नाम तामें,
प्रतिदिन करत प्रबेस सुखलीन हैं।
सङ्ग सङ्ग ऊँचे मंजु माधुरे सुरन माहिं,
गावत कुबेर जस किन्नर प्रबीन हैं ॥ १० ॥
लोल अलकावली ते छूटे जे गमन माहिं,
कल्पद्रुम सुमन अवनि सो सुहात हैं।
मंजु पल्लवन के परे हैं भूरि खण्ड रूरे,
कानन तें खसके कनक जलजात हैं॥

माँग तें झरे हैं मुकताहल बिमल तैसे,
हीतल के हार त्यों महीतल लखात हैं।
रात अभिसारिका नबेलिन के मारग के,
प्रात के समै में चिन्ह एते दरसात हैं॥ ११ ॥
धनद भुवाल के सनेही चन्द्रभाल जू को,
प्रगट निवास रतिनाथ तहँ जानो है।
कुसुम कमान मधुपावली प्रतिंचा जुक्त,
ताही तें न तानै हिय रहत सकानो है॥
तदपि प्रबीन प्रमदान के सहारे सदा,
काम को सकल काम सफल लखानो है।
भृकुटी कमानन अचूक नैन बानन को,
हीय काम बानन को बनत निसानो है॥ १२ ॥
देत है बसन बर बरन बरन बारे,
सुरा देत नैनन बिलास जो सिखावै है।
मंजुल सुमन देत पल्लव मृदुल देत,
भूषन विपुल को सुपास दरसावै है॥
चारु पद कञ्जन को रञ्जन करन जोग,
लाख को सुरङ्ग रङ्ग चोखो सरसावै है।
एक ही कलपतरु चारिहु प्रकारन के,
अबला सिंगारन के साज उपजावै है॥ १३ ॥
धनद भुवाल के महालय के उत्तर में,
सोहत समीप भौन मेरो अभिराम है।

इन्द्र की कमान के समान तासु तोरन है,
तासों दरसात दूर ही ते छबिधाम है॥
ताही तीर राजत है बाल पारिजात प्यारो,
सुत के समान जाहि पोस्यो मम बाम है।
कर को छुवाई देनवारे चारु गुच्छन की,
पाय गरुवाई झुको सोहत ललाम है॥ १४॥
मेघ! तामें बापी एक सोभा की निधान सोहै,
नीलम सिला की जामें पैरीं भूरि भावै हैं।
पन्नन मृनालवारे सुखमा बिसाल धारे,
सोने के सरोज जाल फूले ओज छावै हैं॥
ताही के बिमल सुखदायक सलिल माहिं,
हंसन के बंस निज बास ठहरावै हैं।
आनँद में पागे सखा! पावसौ के लागे तौन,
पासहू के मानस को ध्यान में न लावै हैं॥ १५॥
ताके तीर सोहै प्यारो गिरिवर केलिवारो,
नीलम सँवारो तासु सिखर सुहावै है।
सुन्दर बनकवारे कदली कनकवारे,
आसपास लागे भली आभा भूरि भावै है॥
अरे नील नीरद! सुहावनी समीप तेरे,
छनदा छहरि चारु चोखी छटा छावै है।
तातें या आवै सैल सोई प्रिय भामिनी को,
मेरे सखा मेरो मन भीरु अकुलावै है॥ १६॥

माधवी निकुञ्ज को करैयन के पुञ्ज घेरे,
नेरे ही असोक औ बकुल दोनों राजहीं।
लाल रङ्गवारो लोल पल्लव बलित एक,
दूजे में ललित सुखमा के साज भ्राजहीं॥
बनिता हमारी प्यारी सखी जो तिहारी मेघ!
ताकी अभिलास दोऊ मेरे मन साजहीं।
एक पद बाम चाहै दूजो मुख मद्य वाको,
फूलिबे औ फरिबे को कामना के ब्याजहीं॥ १७॥
मध्य तिन दोहुन के सोने को सुहायो एक,
खम्भ रमनीय बिलसत छबिधाम है।
मूल में लगे हैं हरे बाँस सी प्रभा के मनि,
ऊपर फटिक चौकी चोखी अभिराम है॥
ए रे मेघ! ताही पै तिहारो सखा नीलकंठ,
साँझ समय बैठि कै करत बिसराम है।
कङ्कन की माधुरी रसीली झनकार सङ्ग,
ताली दै नचायो जाहि मेरी प्रिय बाम है॥ १८॥
चतुर सुजान हे बलाहक जू मीत मेरे,
एते सब चिह्नन को राखि के हिये में ध्यान।
देखि कै पवित्र पुनि संख औ पदमनिधि,
चित्र जिनको है मम द्वार पै बिराजमान॥
एती पहिचान सों सदन मेरे पावहुगे,
देखहुगे मो बिन है फीकी सुखमा महान॥

जैसे ओज कैहूँ भाँति धारत सरोज नाहीं,
होवे जग माहीं अंसुमाली जो न भासमान ॥ १९ ॥
बेग ही सदन में प्रबेस करिबे के हेतु,
जलधर भेस बाल कुञ्जर को धारियो।
सुन्दर सिखरवारो सुखद बिहार-सैल,
प्रथम बतायौ जौन ताही पै पधारियो ॥
जीवन अवलि की सुदीपति सोँ भासमान,
दामिनी दमक दीठ रुचिर पसारियो।
रञ्चक ही रञ्चक सुरोचक प्रकास करि,
भीतर भवन ओर नीरद निहारियो ॥ २० ॥
दन्त दुतिवंतन की सघन सुहाति पाँति,
अधरन बिंब ऐसी आभा अरुनारी है।
चकित मृगी सी चारु चञ्चल चितौन चोखी,
सुन्दरी कृसोदरी गँभीर नाभिवारी है ॥
उन्नत उरोजन उभार सों नमति नेक,
भार से नितम्बन के मन्द गति धारी है।
देखहुगे ऐसी रूपवारी मम प्यारी मनौ,
नारिन में पहिलो बिरञ्चि ने सँवारी है ॥ २१ ॥
मेरो सङ्ग छूटे प्रिय अङ्गना नवेली वह,
ह्वै रही अकेली चक्रवाकी अकुलाई सी।
रहति बिहाल ताते अधिक न बोलै बाल,
जानियो सु मेरे दूजे प्रान सुखदाई सी ॥

दारुन बियोगवारे भारी इन द्योसन में,
सोक वाकी सूरत ही दूसरी बनाई सी।
मेरे जान ह्वैहै सुकुमारी प्रानप्यारो सखा,
सुन्दर सरोजिनी तुषार की सताई सी ॥ २२ ॥
निपट बिहाल ह्वै के अधिक विलाप कीन्हें,
सूजन भई है प्रानप्यारी के दृगन में।
कारन बिथा के तप्त साँसन की झारन सों,
रङ्गति रही है नाहिं नीके अधरन में ॥
कर पै कपोल दीन्हें चिन्ता में मगन बैठी,
बदन बुरो है नेक बिखरी लटन में।
ए हो मेघ! मुख की दसा सों दरसात जैसे,
मन्द परि जात चन्द आभा घने घन में ॥ २३ ॥
कै तौ तू बिलोकिहै बिकल वाहि पूजा माहिँ,
मेरे आगमन काज देवन मनावती ॥
अथवा सु मेरी छीनता को अनुमान करि,
ध्यान धरि ह्वैहै मम चित्रहिं बनावती ॥
पींजरे में मैना जौन माधुरे बचनवारी,
वाही सों बताती न तो ह्वैहै इमि भावती।
"सारिके रसिक! तू तो स्वामी की पियारी एरी,
उनको कछूक कहु तोको सुधि आवती"? ॥ २४ ॥
अथवा लखैगो मेघ सज्जन! बियोगिनी को,
बसन मलीन बीन जंघा पै सँवारती।

ऊँचे ऊँचे बोलन में मेरे गोतवारे गीत,
भावन सों गावन को मन में बिचारती ॥
आँसुन की धारा परे तन्त्री तब तीती होति,
ज्यों त्यों पोंछि ताहू को सुगान अनुसारती।
सोक की सताई गाय पावै नहीं बार-बार,
आप ही उठावै तान आप ही बिसारती ॥ २५ ॥
अथवा जलद मीत! जब ते बिछोह भयो,
चढ़े गेह देहरी पै फूल जौन दिन दिन।
अवधि बिसूरि सेस मासन के लेखिबे को,
धरत धरातल पै ह्वै है तिन्हैं गिन गिन ॥
अथवा प्रसङ्ग जौन मेरे परिरम्भन के,
ह्वै है रस लेता मन ही मों मान तिन तिन।
बहुधा बियोग माहिं सुन्दरी बिथा की भरीं,
ऐसे ही बिनोदन बितावती हैं छिन छिन ॥ २६ ॥
दिन में अनेक काज लागे रहैं ताते वाहि,
ब्यापत बिसेस न प्रभाव दुख भारी को।
पर घन! जामिनी निपट सोक धामिनी में,
सालत अपार पीर ह्वै है सुकुमारी को ॥
नींद ते रहित परी छिति पै अचैन चित,
देखहुगे सखा सती भामिनी हमारी को।
बैठिके झरोखे माहिं कहिकै सँदेस मेरो,
आनँद असेस दीजो दुखिया बिचारी को ॥ २७ ॥

देखहुगे मन की बिथा सों तन छीन परी,
एक ही करौट तृन पल्लव बिछाय कै।
मानौं दिसि पूरब के मूल में बिदित बेस,
उदित निसेस कला सेस दरसाय कै॥
निमिख सी रैन जो बिताई हुती चैन करि,
मेरे संग वाने मनमाने सुख पाय कै।
सोई रैन बाढ़ी गाढ़ी पीर बस ताको हाय,
रही सो बिताय ताते आँसुन बहाय कै॥ २८॥
किरनैं सुधाकर की सीतल सुधा के सम,
धाम में झरोखन सों होहिं जौन प्रबिसित।
जानि सुखदाई तिन्हैं जाय तिन सनमुख,
ज्यों की त्यों चितौन लौटि आवै सोक सरसित॥
आँसुन के भारन झुकौहीं बरुनीगन सों,
छाये निज नैन कामिनी यों होती दरसित।
मानौं मेघमाला मई पावस के द्योस माहिं,
थल की सरोजिनी न बन्द है न बिकसित॥ २९॥
बिन ही फुलेल तेल मंजन करत शुद्ध,
ताते अब कोमल हैं अलकैं ललाम ना।
मंजुल अधर की दहनहारी साँसन सों,
ह्वै रहीं बिचल तौन पावैं बिसराम ना॥
सोक बस स्वप्न ही में चाहति मिलाप मेरो,
बाम जब कैहूँ भाँति पावत अराम ना।

आँसू भरे नैनन में नैकहू न नींद तौहूँ,
कामिनि करत नींद आवन की कामना ॥ ३० ॥
माला छोरि याकी मैंने बाँधी हुती बेनी जौन,
सोग भरे दारुन बियोग के प्रथम बार।
खोलहुगो ताहि मैं ही बितैगो जबहि साप,
दाप निरवारि सब आनँद हिये में धार॥
बार ताहि बेनी के अकोमल असम रूखे,
बिखरि बिखरि परैं प्यारी मुख के मझार।
दीरघ नखनवारे प्यारे प्यारे हाथन सों,
बाल तिन बारन सम्हारो करै बार बार॥ ३१ ॥
अबला के अङ्ग के उतरि गिरे आभरन,
उन्नति मृदुलता में ऐसी कृसता की है।
सेज परे जीवन को राखिबो कठिन भयो,
दसा सुकुमारी की रहति मुरछा की है॥
आँसू नव नीर वारे तेरेहू उमगि ऐहैं,
नीरद प्रिया की गति भरी करुना की है।
कोमल सरस होत जिनके हृदय मीत,
तिनकी सुबानि होति बहुधा दया की है॥ ३२ ॥
मो ही मों समानो रहै मेरी कामिनी को मन,
जा में भरपूर प्रीति मेरो ही समाई है।
तातें मैं बिचारत हूँ मेरी प्रिया अंगना की
ऐसी दसा पहिले बियोग ने बनाई है॥

ऐसो जनि चित्त में बिचारियो बलाहक कै,
निज को सुभग जानि गाई मैं बड़ाई है।
थोरे ही समै में तुम देखिहैा प्रतच्छ आपै,
दसा तासु तैसी सब जैसी मैं बताई है॥ ३३॥
घेरे रहैं अलकैं सो पलकैं सकै न डोलि,
कामिनी के नीके नैन अंजन बिहीन की।
बिरह महान बस त्यागो मदपान तासों,
भूली है भ्रुकुटि भंग ऐसो गति दीन की॥
सुभ घरी तोको पाय ए हो मीत जलधर!
बाईं आँख फरकैगी प्यारी छबि लीन की।
सुखमा सुखद ह्वैहै ऐसी वा समै की मनों,
कञ्ज को बिचल कीन्हों हलचल मीन की॥ ३४॥
गोरी छबि लीन नख रेखन बिहीन जामें,
चारुता है कदली सरस अभिराम की।
सोग में बियोग के भई है दूर जा तें प्रभा,
सदा सुखदाई मुकताहल ललाम की॥
सुखद समागम के अंत में जु मेरे कर,
सेवन के जोग रीति जैसी रस काम की।
मेघ सुखधाम! तेरे धाम में पधारत ही,
सोई बाम जंघा फरकैगी प्रिय बाम की॥ ३५॥
बिनती इती है सखा भौन मों पहुँचि मेरे,
मेरी प्रिय प्रेमिनी को जागती जु पावै ना।

तौ तू तासु पीछे अवसेर इक जाम कीजै,
नेकहू गरज को सबद तू सुनावै ना ॥
स्वप्न में मिलति ह्वैहै मोसों मन मोहिनी, सो
तेरो सोर ताकी सुख-नींद उचटावै ना ।
कहूँ छिन माँहिं मेरे कण्ठ ते सरकि हाय,
मंजु भुज बेलिन की ग्रन्थि छूटि जावै ना ॥ ३६ ॥
परसि सलिल तेरो सीतल है पौन जौन,
ताके मन्द झूकन जगैयो प्रानप्यारी को ।
मुकुलित मालती-समूहन के साथ साथ,
प्रफुलित कीजियो पयोद ! सुकुमारी को ॥
ह्वै कर चकित जवै ताकै सो झरोखे ओर,
दामिनी बलित बेस बानिक तिहारी को ।
लागियो सुनावन सरस सोरवारे बैन,
नीरद सुहावन ! वा मान जोग नारी को ॥ ३७ ॥
"हे हे सौभाग्यवंती ! तुव प्रिय पति को मैं सखा आहुँ प्यारो ?
लायो ताको सँदेसो तुव निकट सखी ! मेघ मैं प्रीतिवारो ॥
उत्कण्ठा सों बिदेसी चलत तियन की छोरिबे काज बेनी ।
धावैं हैं सो थकेहू मम धुनि सुनिके स्रौन-आनन्द-देनी" ॥३८॥
ज्यों सीता पौन-पूतै, तिमि सुनि इतनी बाम तोको लखैगी ।
दैके सत्कार पूरो प्रमुदित चित ह्वै बैन तेरे सुनैगी ॥
जो नारी मित्र द्वारा निज प्रिय पति की छेम की बात जानैं ।
तौ वे प्यारे पिया के मिलन सरिस ही चित्त में मोद मानैं ॥ ३९॥

तू है जीवोपकारी तेहि हित, अथवा मानि कै बात मेरी।
तासों यों बोलियो कै तुव पति निवसै राम के सैल ए री॥
जीवै है सो बियोगी अरु कुसल-समाचार पूछै सु तेरे।
ऐसी ही बात बोलै सब तजि पहिले आपदा जाहि घेरे॥४०॥
जैसी तू दूबरी तपति तिमि अहै तप्त औ छीन सोऊ।
तो में आँसू उसासैं जिमि लखियतु त्यों है बिथा लीन सोऊ॥
उत्कंठा है दुहूँ को, बिबस बिछुरि सो आय नाहीं सकै है।
तौहू संकल्प द्वारा सब बिधि सम ह्वै पीव तो में मिलै है॥४१॥
होती जो बात कोऊ प्रगट कहन की सामने हू सखी के।
तौ हू या हौंस होती मुख लगि कहिए कान में भावती के॥
सो प्रेमी कन्त तेरो दरस परस को जाहि सौभाग्य नाहीं।
मेरे द्वारा सुनावैं तोहिं सुबचन ये जो रचे सोक माहीं॥४२॥
भामा! श्यामा लता में तन चितवन हू चारु चौंकी मृगी में।
केकी के पङ्ख माहीं कच मुख सुखमा सोहती है ससी में॥
भासैं भ्रू-भङ्ग सी त्यों लहर दिनन में पै अहो प्रानप्यारी!
जैसी सोभा तिहारी तेहि सरिस नहीं एक हू में निहारी॥४३॥
गेरू सों चित्र तेरो बिरचि बिच सिला मान के कोपवारो।
चाहूँ मैं चित्र द्वारा परि तुव पग पै मान मोचूँ तिहारो॥
त्योंही आँसू बहैं हैं सजल दृगन सों जाय नाहीं निहारो।
हा हा! बैरी बिधाता सहत न मिलिबो चित्रहू में हमारो॥४४॥
कैसेहू स्वप्न में जो लहि भरन चहूँ अङ्क में तोहि प्यारी,
तौ निद्रा की दसा में गगन बिच दोऊ देहुँ बाहैं पसारी।

देखैं जो सो अवस्था बन-सुर-बनिता सोक धारैं महान,
आँसू के बिन्दु त्यागैं द्रुमन दलन पै स्थूल मोती समान ॥४५॥
हे प्यारी! पौन जोई परसि लहलहे सोहने देवदार,
आवै है या दिसा को परिमल तिनके छीर की लै अपार।
भेटूँ हूँ कामना कै हिम गिरिवर की पौन सोई सुहाई,
होवै है भाव ऐसो सुखद पवन सों भेटि कै तोहिं आई ॥४६॥
कैसे ह्वै जाय छोटी निमिख सरिस ये जामिनी जौन भारी,
कैसे ह्वै जाय थोरी कठिन दिवस की पीर सन्तापकारी।
ऐसी ऐसी करै है दुरलभ बिनती चित्त मेरो दुखारी,
गाढ़ी भारी बिथा सों बिन सरन भयो सो अहो प्रानप्यारी ॥४७॥
आसा ही कै सहारे अतुलित दुख में मैं धरूँ धीर जैसे,
तू हू हे भागवन्ती दुसह बिरह में राखु री बोध तैसे।
ना कोऊ नित्य भोगै अति सुख, अरु ना नित्य ही दुःख भारी,
ऊची नीची अवस्था लखियतु जग में चाल ज्यों चक्रवारी ॥४८॥
बीतैगो साप मेरो भुजग-शयन तें बिष्णु जागैं जबै री।
तासों ये मास चारों तिय दृग अपने मूँदि कै दे बितै री॥
पूरी ह्वैहैं उमंगैं सकल दिनन की वा समै प्रानप्यारी।
ऐहैं आनन्दवारी जबहिं सरद की जामिनी चन्द्रवारी॥४९॥
याहू वाने कही है इक निसि गर सों लागि सोई हुती तू।
जागी तू औचकै ही पुनि अति दुख सों बाल रोई हुती तू॥
मैं बारम्बार पूछ्यो तबहि बिहँसि तैं बैन ऐसे उचारे।
मैं देख्यो स्वप्न ऐसो रमत इक तियै तू छली प्रानप्यारे॥५०॥

बातैं ऐसी पत्ते की मृगनयनी! जानु तू छेम मेरी।
यामें बिश्वास कै तू पुरजन चरचै नेक ना कान देरी॥
प्यारी! तू यों न सोचै बहुत बिरह में होत है नेह ऊनो।
पूरी होवें न हौसैं दिन दिन तेहि सों होत है प्रेम दूनो॥५१॥
नारी है सो सताई प्रथम बिरह की धीर ताको धरैयो।
नंदीजी के बिदारे सिखर तेहि महा सैल तें लौटि ऐयो॥
लैयो वाकी निसानी कुसल बचन हू मोहिं वाके सुनैयो।
ये बासे कुन्द ऐसे अतिसय मुरझे प्रान मेरे बचैयो॥५२॥
का अंगीकार कीन्हो हित करि करिबो बन्धु के काज ए तू?
बड़ा गम्भीरता में जलद वर लगै जो "करूँगो" कहै तू॥
जाचे ही देत पानी पपिहन गन को तू सदा मौन ठानी।
अर्थी को अर्थ पूरै सुकृत जनन की सोइ स्वीकार बानी॥५३॥
भ्राता के भाव सों वा धरि हिय करुना दीन वा मोहिं जानी।
कै दीजै काज मेरो अनुचित बिनती हे सखा चित्त आनी॥
भावैं जो देस तोको तिन बिच बिचरौ पावसी सोभ धारी।
न्यारी होवै न तोसों इक छन छनदा रावरी प्रानप्यारी॥५४॥
जानी ज्योंहीं कहानी बिरह दुखित वा यक्ष की यक्षपाल।
मोच्यो त्यों शाप ताको रिस तजि सब ही, हीय ह्वै कै दयाल॥
प्यारी प्यारे मिलाये सब दुख तजिकै "पूर्ण" आनन्द पूरे।
दोऊ स्वच्छन्द भोगे नित प्रति मन के भोग के साज रूरे॥५५॥

प्रकृति-सौन्दर्य

वसन्त-वर्णन

बाटिका बिपिन लागे छावन रँगीली छटा,
छिति से सिसिर को कसाला भयो न्यारो है।
कूजन किलोल सों लगे हैं कुल पंछिन के,
'पूरन' समीरन सुगन्ध को पसारो है॥
लागत बसन्त नव सन्त मन जागो मैन,
दैन दुख लागो बिरहीन बरियारो है।
सुमन-निकुंजन मैं, कंजन के पुंजन मैं,
गुंजत मलिन्दन को बृन्द मतवारो है॥ १॥
भयो ना बिकास है सुबास को सुपास नहीं,
असन प्रकास भानु जो पै बिस्तारो है।
रज नाहीं, रङ्ग नाहीं, मधु को प्रसङ्ग नाहीं,
होत ना तरल लै तरङ्ग को सहारो है॥
तापै भौंर रीझो, मन खीझो जातु देखे दसा,
'पूरन' ये कैसा हाय नेम अनुसारो है।
फूल कंजबृन्द मकरन्द को बिहाय अर-
बिन्द की कली में जो मलिन्द मतवारो है॥ २॥

कुंजन में सघन तमालन के पुंजन में,
करत प्रबेस ना दिनेस उजियारो है।
प्यारी सुकुमारी स्यामा साज सजे ठाढ़ी तहाँ,
नीलमनि-मालन को जाल छबिवारो है।
छिटिके बदन चन्द कुन्तल अनन्द स्याम,
स्याम-रङ्ग-पागी नाम स्यामा तासु प्यारो है॥
'पूरन' सुअङ्गन पै सौरभ प्रसङ्ग पाय,
झूमै स्याम भौंरन को झौंर मतवारो है॥ ३॥
कूजनि बिहङ्गनि की घटिका बजैं सो मंजु,
ओस-कन सोई मद झरत निहारो है।
'पूरन' प्रसूनन की सुरँग अँबारी सजी,
भृङ्गन की भीर सों सरीर बरियारो है॥
बैठो ऋतु-राज तापै जग की करत सैर,
सौरभ अतङ्क जग माहिं बिस्तारो है।
धावत महावत अनङ्ग के इसारे बीर,
सुरभि समीर ये मतङ्ग मतवारो है॥ ४॥
तू ही है द्रुमन-बृंद सुमन अनंद तू ही,
रङ्गन की सोभ तू ही भृङ्गन को भीर है;
रुचिर बिहङ्ग तू ही कूजनि अभङ्ग तू ही,
ऋतु रस रङ्ग तू ही रसिक अमीर है।
जगत बसन्तवारो सुखमा अनन्त तू हीं,
तू ही निसिकंत तू ही दम्पति अधीर है;

'पूरन' अनंद तू ही रुचिर सुगंध तू ही,
सीतल सुमंद तू ही सुखद समीर है ॥ ५ ॥
चन्दन वलित चारु देखियतु सुण्ड-दंड,
भृङ्गन की जौन रज रंजित पतीर है।
सोहत स्रवत हालै पल्लव बिसाल जौन,
मञ्जुल सुगन्धित स्रवत मदनीर है ॥
सेत कुंद पंति एकदंत की अनंत सोभा,
मञ्जरी मुकुट अङ्ग फूलन की भीर है;
'पूरन' निकुञ्ज रूपी कुञ्जर बदन जू की,
बन्दत बसन्त लीन्हें बिजन समीर है ॥ ६ ॥
अञ्चल उड़ावै झपकावै री दृगंचल को,
चञ्चल महान छिन धरत न धीर है।
केसर बिखारै, रसग्राही देस देसन के,
धूरि सों बलित कीर डारै नयौ चीर है ॥
अङ्गन लगत नेकु सङ्ग न तजत आली,
सुमन खिलावत थकावत समीर है।
आली साँवरे की लँगराई नहीं मेरी बीर,
लगी या समीर हू को ब्रज को समीर है ॥ ७ ॥
तू ही है सुमन, तू ही रङ्ग है प्रसूनन में,
सुखमा असीम तू ही तू ही हरियाली है;
तू ही नीर नाली घट कुण्ड तरु-मूल तू ही,
तू ही फलवाली तू ही पात तू ही डाली है।

जगत की बाटिका को सार सब भाँति तू ही,
तू ही ब्रह्म 'पूरन' करत रखवाली है।
भृङ्गन पतीर तू ही, भीर है विहङ्गन की,
सौरभ समीर तू ही स्वामी तू ही माली है॥ ८॥
चंपकलता को मेल कीन्हो है तमाल संग,
मानौ कोऊ बाला बर पायो बनमाली है;
'पूरन' सुरंग स्वच्छ फूलन की क्यारी रची,
मानौ मनि-चौकन की सुखमा निराली है।
द्रुमन बसाये हैं बिहंग बर बैन बारे,
मानौ गान मंगल की बिदित प्रनाली है;
दम्पति बिबाह को उछाह होत देखे जाहि,
आली यहि बाग को प्रबीन कोउ माली है॥ ९॥
चम्पक, निवारी, दोना, मोगरा, चमेली, बेला,
गेंदा, गुलदावदी, गुलाब सोभसाली है।
केतकी, कनैर, गुलसब्बो, गुलनार, लाला,
हिना जसवन्त कुञ्ज केवड़ा की बाली है॥
'पूरन' बिबिध चारु सुन्दर प्रसूनन की,
छटा छितिमण्डल में छै रही निराली है;
'पूजन' कौ मानौ बनमाली के चरन कञ्ज,
साजत बसन्त-माली फूलन की डाली है॥ १०॥
कूकि-कूकि कोकिला करेजो करै टूक-टूक,
पाछे परी कारी दईमारी काकपाली है;

काम के कृसानु को बढ़ावत समीर तापै,
जारत पलास कचनारन की लाली है।
आय निरदई ये लगावत जरे पै लौन,
'पूरन' जू यामें काहू सौत की कुचाली है;
लायौ बनमाली बिन साजि कै बसन्त डाली,
आली यो कितै को बजमारो बरै माली है ॥ ११ ॥
किंसुक, अनार, गुलनार, सहकार, कुन्द,
चम्प, कचनार, जसवन्त छबिवन्त की;
सीतल, सुगन्ध, मन्द, दायक अनन्द पौन,
कञ्ज बन भृङ्ग वृन्द चन्द्रिका दिगन्त की।
कोकिल, कलापी, कीर, चातक, कलापन की,
मधुर अलापन की मङ्गल अनन्त की;
ईस भगवन्त जू की महिमा कथन हारी,
महिमा में लसै भूरि सुखमा बसन्त की ॥ १२ ॥
पलास जपा गुलनार अनार, रँगे कचनारन सों बनबाग।
सरोजन गुञ्जन भृङ्गन पुञ्ज, सुहात समीर बिहङ्गन राग ॥
गहै किन मानिनि बावरी सीख, लखै किन बाम धरा को सोहाग।
सुरङ्ग छटा मिस जा हित कन्त, बसन्त को छाय रह्यो अनुराग ॥१३॥
पीतम को पीरो पट फूली सरसों की छटा,
चूनरी प्रिया की छबि किंसुक अनन्त की।
बाहु दृग बदन सरोज बन ओज छाजै,
केस कालिमा है अलि-पुञ्ज छबिवन्त की ॥

पिकी-गान बंसी-तान बासित बयारी खास,
दम्पति प्रभा है उजियारी निसिकन्त की।
'पूरन' बिलोकौ अनुराग बस पावस में,
करती जुगल सेवा सुखमा बसन्त की॥ १४॥
कीट के मधुप तैसे मेरे कचजाल भाखे,
छबि कहो मुख की कलङ्की निसि कन्त की।
बानी काक-पाली-सी पलास बिनवास नासा,
पङ्कज बखानी सोभनैन छबिवन्त की॥
'पूरन' मनाय मोहिं आली न दुखाओ मन,
रमनी करै यों अनमनी बात कन्त की।
करि अपमान मेरी सुखमा अनूपम को,
पिय ने दई क्यों भूलि उपमा बसन्त को॥ १५॥
बासित बयारी उतै, स्वासा की सुगन्ध इतै,
इत मुख-सोभा उत प्रभा निसिकन्त की।
उत अरविन्दन पै छटा ज्यों मलिन्दन की,
इत कर नैन केस कालिमा अनन्त की॥
कोकिल-कलाप उत, मधुर अलाप इत,
टेसू उतै सारी इतै सूही छबिवन्त की।
'पूरन' बिलोकौ चलि कैसी कुञ्ज कानन में,
होड़ सी लगी है लाल बाला की बसन्त की॥ १६॥
पीत रङ्ग सारी जैन फूली सरसों की थली,
अलक-छटा है पाँति अलिन अनन्त की।

झूमर रसाल बौर अङ्गराग है पराग,
पौन रस बात है सहेली हासवन्त की ॥
कोकिल-कलाप की अलाप गान मङ्गल है,
कंजन बिकास तेज आभा रति-कन्त की।
लाय मन चेत किन मानिनि बिलोकै छबि,
अवनि बनी है बनी बनिता बसन्त की ॥ १७ ॥
लाल बन बागन की भूरि छबि होन लागी,
बिकसन लागी भीर टेसू छबिवन्त की।
अरबिन्द पुंजन पै गुंजन मलिन्द लागे,
बिलसन लागी रैन, आभा निसिकन्त की ॥
बजन लगी है कुंज बंसी मंजु साँवरे की,
मोहन लगी है भीर गोपिन अनन्त की।
खोय कै सुरति एक बैठी गृह मान ठानि,
बावरी अजौं ना तोहिं खबरि बसन्त की ॥ १८ ॥
सुमन रँगीले चटकीले छित छहरत,
सघन लतान की ललित सोभ न्यारी है।
गुंजत मलिन्द-पुंज मंजु कुंज कानन में,
सीतल सुगन्ध मन्द डोलत बयारी है ॥
गावत सरस बोल गोल बहु पंछिन के,
'पूरन' बिलोक छबि उपमा बिचारी है।
ईस भगवन्त की बिरद बर गायन को,
सन्त श्री बसन्त गान-मण्डली सँवारी है ॥ १९ ॥

ग्रीष्म

सेस फुनकार की बतावत है झार कोऊ,
    कोऊ कला भाखत है प्रलय कृसानु की,
रुद्र-रस-बैन कोऊ, शङ्कर को तीजो नैन,
    उघरो बतावै कोऊ ताप अघवान की।
ग्रीषम की भीसम तपन देखि 'पूरन' जू,
    मन में बिचारि यह बात अनुमान की;
आवा सी अवनि है, पजावा सी पवन,
    लेत दावा सों लिखाये बाजदावा धूप भान की ॥ १ ॥

भये हू सुरच्छित सो नसत अवश्य जापै,
    होति प्रतिकूल है नजीर भगवान की;
रच्छा बिनु कीन्हें हू सुछन्द ठहरात जापै,
    दया दृष्टि होति हरि करुनानिधान की।
सूखत तड़ागन के तीर तरु बागन के,
    करिए सिंचाई बरु उत्तम बिधान की;
'पूरन' भनत पै पहार वारे पादप को,
    आतप सुखावत ना ग्रीसम के भान की ॥ २ ॥

धावत धुँधात, घनी छावत गगन धूरि,
    प्रबल बवंडा ठौर ठौर भूमि भासे हैं;
तावत प्रचण्ड मारतण्ड महिमंडल को,
    जरत जमीन जल-जीव जाल तासे हैं।

डारिए पखानहू पै पानी तो छनक जात,
'पूरन' बिलोकि गति भाव यों प्रकासे हैं;
ग्रीसम समै में को चलावै जीवधारिन की,
जामें जड़ पाहन हू व्याकुल पियासे हैं ॥ ३ ॥
भ्रम को भयानक प्रबल भ्रमबात घेरे,
कुमति की धूरि के घनेरे जल भासे हैं;
काम की जलाक जारै मोह की उमस मारै,
क्रोध के अरक जामें लोभ के जवासे हैं।
आतप त्रैताप को तपावै दुःखदाई हाय,
नाथ! हम हारे मृग तृसना तृसा से हैं;
'पूरन' उबारौ घनस्याम सुख सिंधु स्वामी,
जारे गर्व ग्रीसम के टेरत पियासे हैं ॥ ४ ॥
स्रद्धा के भरे हैं ताल, सरिता मुमुच्छता की,
प्रभु-जस-गान बोल मोरन प्रकासे हैं।
लतिका उपासना की, पवन अवासना सों,
झूमती हरित नेम पादप मों खासे हैं ॥
'पूरन' अनन्द जल बरसत भूरि पूरि,
हरि अभिराम ध्यान स्याम घन भासे हैं।
ऐसे सुठि पावस मैं प्राणी जे बिमुख होत,
तेई भव ग्रीसम में तपत पियासे हैं ॥ ५ ॥
तोरत तरुन तरु झोरत अरन्य भार,
हरित बितान बर बागन उजारो है।

उड़त डँडूर, धूरि भूरि सो उड़ावत है,
नीर सर बापी सरिता को सोखि डारो है ॥
प्रबल झकोर जोर सोर घोर मारुत को,
सीकर प्रबाह मत स्रवत निहारो है।
'पूरन' प्रकोप ताप आतप जलाकन की,
ग्रीसम प्रचण्ड ये गयन्द मतवारो है ॥ ६ ॥
तोरे देत तुङ्ग तरु झार बन झोरे देत,
फोरे देत कान धुनि आँधिन महान की।
ताये देत थल को, जलासय जराये देत,
जग हहराये देत लूक बे प्रमान की ॥
घूमि भ्रमबात, भूत दूत-से चहूँघा भूमि,
फेरत दोहाई-सी निदाघ दुखदान की।
ग्रीसम की अन्धाधुन्ध भोसम कही ना जात,
धूरि झोंकि कीन्हीं मन्द आभा चन्द भान की ॥ ७ ॥
दावा के अहारी! अघासुर के प्रहारी,
जिन झेली बिस-झार काली-फनन महान की।
ग्रीसम सुखद चाँदनी में ब्रजचंद सोई,
काहे जू तपत सुधि त्यागे खान-पान की।
ललिता कहति हँसि बैन बर बिंग बारे,
'पूरन' बिलोकि गति आतुर सुजान की ॥
प्यारे तन लागी धूप जेठो वृषभान कीधौं,
कोपीं रावरे पै आजु बेटी वृषभान की ॥ ८ ॥

वर्षा-वर्णन

चातक-समूह बैठे बोलन को बाये मुख,
नाचन को मोर ठाढ़े पाँव ही उठाये हैं;
'पूरनजी' पावस को आगम सुखद जानि,
आनँद सों बेलिन के हिये लहराये हैं।
द्रोही द्रुम जाति केरे! अरक जवास एरे!
तेरे जरिबे के अब द्यौस नियराये हैं;
होतल महीतल को सीतल करनहारे,
देखु कैसे प्यारे घन कारे घेरि आये हैं॥ १॥

गाजैं मेघ कारे मोर कूकैं मतवारे, रटैं,
पपो-बृन्द-न्यारे, जोर मारुत जनावती;
इन्द्र-चाप भ्राजै, बक-अवली बिराजै छटा,
दामिनि की छाजै भूमि हरित सुहावती।
'पूरन' सिंगार साजि सुन्दरी-समाज आज,
झूलती मनोहर मराल मञ्जु गावती;
चन्द बिनु पावस में जानि के सुधा की हानि,
मानों चन्द्र मण्डली पियूष बरसावती॥ २॥

झूमि-झूमि लोनी-लोनी लतिका लवङ्गन की,
भेंटती तरुन सों पवन मिस पाय पाय;
कामिनी-सी दामिनी लगाये निज अङ्क तैसे,
साँवरे बलाहक रहे हैं नभ छाय छाय।

घनस्याम प्यारी बृथा कीन्हों मान पावस में,
सुन तौ पपीहा की रटन उर लाय लाय;
पीतम मिलन अभिलासी बनिता सी लखौ,
सरिता सिधारी ओर सागर के धाय धाय ॥ ३ ॥
अवली बकन की बिमल दरसाये देत,
चहूँ ओर छाये देत घटा घनी काली है;
इन्द्र को धनुस सप्तरङ्गी दरसाये देत,
धरा पर देत सरसाये हरियाली है।
पावस सुहायो निज आगम जनाये देत,
धोय के बहाये देत ग्रीसम बिहाली है;
मोरन के सोरन सों कानन रमाये देत,
झंझा की झकोरन झुमाये देत डाली है ॥ ४ ॥
भाँति भाँति फूलन पै भूलन भ्रमर लागे,
कालिन्दी के कूलन पै कुंजन अपारन में।
इन्द्र की बधूटिन के बृन्द दरसान लागे,
मोर सरसान लागे मोरन पुकारन में।
दामिनी-छटा सों, घटा गाजन अछोर लागी,
राजनि हिलोर लागी सरिता की धारन में।
फूलें बन फूले मन आनन्द भरन लागे,
झूले लागे परन कदम्बन की डारन में ॥ ५ ॥
चपला चमकदार भूसन लसत भूरि,
जुगनू मनिन जाल सोहै पोर पोर हैं।

कालिमा तिमिर की सँवारी स्याम सारी स्वच्छ,
अङ्गराज नीरद की सुखमा अथोर हैं।
'पूरन' पुरुस पै प्रकृति बाम पावस में,
मिलन चली है मैन मारुत को जोर है।
मोरन पुकार किंकिनी की धुनि मंजु होत,
झनकार झिल्लिन की झाँझन को सोर है॥ ६॥
आई बरसात की रसीली सुखदाई ऋतु,
छित पै चहूँघा सरसात सुघराई है।
साजे बर बसन अभूसन सकल अङ्ग,
झूलत हिंडोरे तरुनीन समुदाई है।
पैंग के भरत बिछुवान की मधुर धुनि,
सुनि सुनि 'पूरन' यों उपमा सुनाई है।
हंसन की अवली भुलाय कै पुरानी चाल,
आज ऋतु पावस को दै रही बधाई है॥ ७॥
सागर हैं कुण्ड जारी नारियाँ नदीगन हैं,
क्यारियाँ सघन बन सुखमा निराली है।
बिहरैं अमित जन्तु, बिबिध प्रतच्छ तैसे,
'पूरन' सुगन्ध हरि-कीरति प्रनाली है।
जग है बगीचा श्री रमावर हैं स्वामी तासु,
ऋतु दास गन की रहत रखवाली है।
चतुर सुरेस चेरो करत सिंचाई रहै,
देव चतुरानन प्रधान ताको माली है॥ ८॥

कीधौं मारतण्ड की प्रचण्डता समन हेतु,
देवी धरनी ने बान सीतल पँवारे हैं।
कीधौं निज सम्पति को चोर सविता को जान,
करत बरुन ओर वाही के इसारे हैं।
कीधौं सियरायबे को 'पूरन' समीरन को,
प्रकृति कपूर-कन सघन उछारे हैं।
कीधौं घोर ग्रीसम में तापित महीतल पै,
हीतल जुड़ावन को सीतल फुहारे हैं॥ ९॥

धानो आसमानी सुलैमानी मुलतानी,
मूँगी सन्दली सिन्दूरी सुख सौसनी सुहाये हैं।
कञ्जई कनैरी भूरे चम्पई जँगारी रूरे,
पिस्तई मँजीठी सुरमई घेरि आये हैं।
मासी नीलकण्ठी गुलाबासी सुखरासी तूसी,
कुसुमी कपासी रङ्ग 'पूरन' दिखाये हैं।
नारंजी पियाजी पोखराजी गुलनारी घने,
केसरी गुलाबी सुवापङ्खी मेघ छाये हैं॥ १०॥

पावस की रेलगाड़ी

मेघ बहुरङ्गी चारु अवली किराचिन की,
कौंधा रूप इञ्जन की आगी उठै बर बर।
सीठी करै सीटी-धुनि कूक पिक मोरन की,
तार "गरगट्ट" शब्द दादुर की टर टर।

नीलगिरि-विन्ध्याचल-चौकिन करत पार,
खेप भरि लाई जो झरत नीर छर छर।
धावती रँगीली रेलगाड़ी भूप पावस की,
होत व्योम-मारग में सोर घोर घर घर ॥ ११ ॥

चाँदनी चमेली चारु सावनी रसालन में,
बकुल लवङ्गन कदम्बन सगन में।
'पूरन' सरस ऋतु पावस के आवत ही,
भई है बहाली हरियाली बाग बन में।
पादप वे रूरे जौ लों आतप से झूरे रहे,
उन्नति निहारी भारी रावरे तनन में।
अरक जवास! आप जग में उदास ऐसे,
झरसत कैसे बरसात के दिनन में ॥ १२ ॥

पालक पावस

मार्तंड तेज जल-सागर को तपावै,
ताके समीर परमाणु उड़ाय धावै।
पावै प्रसङ्ग जहँ शीतल मेघ छावै,
या भाँति ईश सब देश-कृषी सिंचावै।

नाना प्रकार उपजैं फल, धान्य होवै,
कासार कूप नद में जल भूरि सोहै।
सो धन्य धन्य हरि पालन शील स्वामी,
जो देत 'पूर्ण' बिधि पुत्रन अन्न-पानी ॥

बरसात में व्यायाम का आनन्द

लँगोटे कसैं जाँघिये त्यों चढ़ावैं,
अखाड़े खड़े इष्टदेवै मनावैं।
करैं बैठकैं नेम सों दण्ड पेलैं,
घुमावैं बनेठी गदा वार झेलैं॥
करैं बाहु को युद्ध पूरे खिलारी,
पछारैं गिरैं होत आनन्द भारी।
लगे 'पूर्ण' व्यायाम में मल्ल सोहैं,
मनौ देह में स्वास्थ्य को बीज बोवैं॥

आनन्दमयी बरसात

अवसर बर नीको, 'पूर्ण' है मोद जी को,
बजहिं मृदु मृदङ्गा बीन सारङ्ग चङ्गा।
सरस मधुर बानी राग लालित्य-सानी,
चतुर जन सुनावैं मेघ मल्लार गावैं॥
मन ऋतु बरषा की, ह्वै रही देव-गङ्गा,
उठत रुचिर तामें तान ही को तरङ्गा।
सुरपुर सम ताके साज वा भूमि धारे,
मधुर सुर बिलोके तासु पीयूष धारे॥

हिंडोला

रूप मदमातो नव सुन्दरी हिंडोरे बैठि,
मधुर मनोहर मलार मंजु गावहीं।

पग सों धरा पै मारि ठोकर बढ़ावैं पैंग,
ऊँचे ह्वै गगन ओर सोई समुहावहीं ।
अहिन को भूतल सुरन को अकास बास,
जानि कबि 'पूरन' बिचार ठहरावहीं ।
टेरि टेरि नागिन औ देवन की अंगनान,
गर्बिता नवेली चारु चरन दिखावहीं ॥

वर्षा कामिनी

नवलान की प्यारी अलाप सोई, धुनि केकी कलाप सुनावत हैं;
अबला चपला मनि जोगन हैं, कच-पुञ्ज निसा तम छावत हैं;
बरखा के बिनोद बिहार घने, हिय 'पूरन' मोद बढ़ावत हैं;
रस मेघ महासुखमा नभ तें, सुख की बुँदियाँ बरसावत हैं ॥

कौंधा लपकने के कारण

पावस की पाय कै रसीली सुखदाई ऋतु,
भूलि दुख सगरे सँजोग सुख पावत हैं ।
अङ्क मैं लगाय चञ्चला को घन भागसाली,
'पूरन' छिनै ही घन आनँद मनावत हैं ।
हलके हृदयवारे कारे मुख लीन्हें वृथा,
हठ कै बियोगिन की बिथा को बढ़ावत हैं ।
बार बार छनदा दिखाय गोहराय मोहिं,
धुरवा घमण्डी हाय जियरा जरावत हैं ॥ १ ॥

जल भरी झारी कारी बादरी बिराजै ब्योम,
गरजन मन्द मन्त्र मङ्गल उचारे हैं।
छहरति दामिनि सो भाजन घुमावन में,
दमकत भूषन अमन्द दुतिवारे हैं।
परत फुहार जल पावन झरत सो ही,
पेखि कबि 'पूरन' बिचार उर धारे हैं।
प्यारी सुकुमारी की बलाय बरकावन को,
देखौ देवनारी आज आरती उतारे हैं॥ २॥

शरद्वर्णन

चाल पै मरालगन कर पै मृनाल कञ्ज,
भृङ्गजाल बारन पै मन को भुलायौ है।
नैनन पै खञ्ज-बृन्द रीझो चन्द आनन पै,
तप को बिधान सब ही के मन भायो है।
एक पग ठाढ़े कोऊ बूड़त भ्रमत कोऊ,
भसम रमावै कोऊ फेरा देत धायो है।
राधे हरि प्यारी तेरे रूप के उपासकन,
जग को शरद में तपोबन बनायो है॥ १॥
बिचरन खंज लागे, जलधर बृन्द भागे,
बढ़न अनन्द लागे, सोभा अधिकाई है।
बिकसन कंज लागे, हुलसन भृङ्ग लागे,
बिलसन हंस लागे मंजुता सुहाई है।

मारग चलन लागीं, सरिता थिरन लागीं,
तीतुली नचन लागीं, सरद अवाई है।
चन्द को चकोरन की मण्डली तकन लागी,
लागी भूमि-मण्डल पै लसन जुन्हाई है॥ २॥

अरक जवास ऐसे बिकसे कुमुद कंज,
सेत घन व्योम धूरि धुन्ध ऐसी छै रही।
हीतल दहनहारी सीतल पवन आली,
जेठ की जलाक सो तपन तन दै रही।
चाँदनी अखण्ड लागै आतप प्रचण्ड ऐसी,
किरन सुधाकर की हालाहल बै रही।
बिन ब्रजचन्द सुख कन्द मोहिं 'पूरन' जू,
भीषम सरद बरै ग्रीषम सी ह्वै रही॥ ३॥

शरद ऋतु के निर्मल आकाश में तारागण

सरद-निसा में व्योम लखि के मयङ्क बिन,
'पूरन' हिये में इमि कारन बिचारे हैं।
बिरह जराई अबलान को दहत चन्द्र,
तातें आज तापै बिधि कोपे दयावारे हैं।
निसिपति पातकी को तम की चटान बीच,
पटकि पछारि अङ्ग निपट बिदारे हैं।
तातें भयो चूर चूर उचटे अनन्त कन,
छिटके सघन सो गगन मध्य तारे हैं॥ १॥

सोहै सरोज सित सुन्दर सिन्धु भाये,
नीलारबिन्द बन धौं हिम-बिन्दु छाए।
हीरे बिशालवर नीलम शैल आहिं,
बूटे किधौं प्रकृति बाम सुचीर माहिं ॥ २ ॥
आवै किधौं तमहि जीतन रैन राज,
मैदान माहिं दल तासु रह्यो बिराज।
कीधौ बिरञ्चि लिखि कै महिमार्थ सार,
श्री ब्रह्म को बिरदयन्त्र रच्यो अपार ॥ ३ ॥

कै सेवती सुमन नन्दन-बाग बारे,
जो सूँघि सूँघि मग में अमरीन डारे;
माया-तिया कि पिय 'पूरन' ब्रह्म काजै,
पर्यंक पै पुहुप पुञ्ज अपार साजै ॥ ४ ॥
कै रैन चन्द सुत बृन्द अनन्त प्यारे,
आनन्दधाम बिहरैं छबिवन्त वारे;
पूजै कि भक्त वर अम्बर श्री हरी को,
साजे सदिव्य बहु दीपक आरती को ॥ ५ ॥

शरद्द-महेश

सेत रङ्गवारे घन सोहत भसम अङ्ग,
भाल बर भूषन ससी की छटा छाई है।
देवधुनि धार है अपार सोभा हंसन की,
कञ्जबन गौरिजू की सोह्नी सुघराई है।

कासन को पुञ्ज मञ्जु राजत बृषभराज,
भृङ्गन की अवली भुजङ्गन सी भाई है;
देखु सिवभक्तन को हियो हुलसावन को,
सुखमा शरद की महेस बनि आई है॥

शरद-भामिनि

चन्द्रमुखी भामिनि प्रकृति क्वार जामिनि में,
'पूरन' पुरुष सङ्ग मिलन सिधारी है।
सरस समीर स्वास सोहत सुबास मन्द,
चाँदनी चटक चारु रूप उजियारी है।
चिहूँक चकोरन की नूपुर बजत मंजु,
सेत घन-अङ्ग अङ्गराग दुति प्यारी है।
तारागन बलित ललित चारु अम्बर की,
सारी स्याम बूटेदार सुन्दर सँवारी है॥

शिशिर-वर्णन

दसन कटाकट सो गति की खटाखट है,
अङ्गन को कम्प बेग 'पूरन' जतायो है।
स्वास सङ्ग भाफ जो कढ़त धूमधार सोई,
इंधन है अन्न आग पेटी पेट भायो है।
रैन को अराम बिसराम कलधाम को है,
चाक चिकनैबो तनु तेल जो लगायो है;

कागज किराचिन लै धावत धरातल पै,
सिसिर सरीर देखो अञ्जन बनायो है ॥

शिशिर की गति

तूल को प्रभाव बात सहज उड़ाये देत,
सरत न काम रस औषध के भोग मे ।
पावक प्रचण्ड सों दुचन्द है प्रचण्ड पाला,
बृथा है दुसाला आला सरदी के सोग में ।
पूरन व्यायाम प्राणायाम कीन्हें आठौ जाम,
रंचक न होत कमी कंपन के रोग में ।
सिसिर-समै में दोई सीत की हरत भीत,
ललना सँजोग माहिं घुटना बियोग में ॥

शान्तिमय शिशिर

पावक जुड़ानी बिषधर न गँवाई रिस,
चण्ड कर सकल प्रचण्डता बिहाई है ।
चोर व्यभिचारी निसि भ्रमन बिहाय बैठे,
सिंह-बृक बृन्द पैठ्यौ गुहन लुकाई है ।
भीदिबस जाके दिन दीन ह्वै के सिमिटत,
पाला मिस कीरति अपार जासु छाई है ।
'पूरन' बिलोकौ जग सातुकी बनावन को,
सांतिमई सीतमई सिसिर सुहाई है ॥

सुन्दर फुलवारी

चंद्मुखी चाव-भरी जैसे पिय-चाकरी में,
सूरजमुखी त्यों मुख जोयो करै भान को।
सांत रसै चाहै जिमि वासना-बिहीन सन्त,
भौंर-बृन्द लोभै त्यों प्रसून मधु-पान को।
झूमि लगि भूमि रही डार फलदार जैसे,
सीखत गुनी ना उर लेस अभिमान को।
'पूरन' मिलत धर्मनीति उपदेस जामें,
कौन भाँति भाखूँ बाग-महिमा महान को॥

गङ्गाजी की शोभा

चामर सी चन्दन सी चन्दिका सी चन्द ऐसी,
चाँदनी चमेली चारु चाँदी सी सुघर है।
कुन्द सी कुमुद सी कपूर सी कपास ऐसी,
कल्प-तरु-कुसुम सी कीरति सो बर है।
'पूरन' प्रकास ऐसी काँस ऐसी हास ऐसी,
सुख के सुपास ऐसी सुखमा की घर है।
पाप को जहर ऐसी कलि को कहर ऐसी,
सुधा की लहर ऐसी गङ्गा की लहर है॥

सुन्दरी-सौन्दर्य्य

बिराजत बंदन भाल बिसाल, महावर लालिमा ह्वै रही लाग।
रहे द्दग ह्वै त्यों सुरङ्ग सुहाय, कपोलन लागे तमोल के दाग॥
कहाँ लौं कहूँ सुखदेनो अनूप, लखी सुखमा ये हुते बड़े भाग।
लसैं रँग रावरे लालो छटा, रसराज पै मानो चढ़यौ अनुराग॥१॥

गङ्गा-जमुना की कोऊ सुखमा बतावै कोऊ,
सङ्गति सतोगुन रजोगुन अमन्द की।
कोऊ धूप-छाँह की बतावत छटा है कोऊ,
लाज पै चढ़ाई कुसुमायुध सुछन्द की॥
सोभा-सिन्धु नवला की बैस की बिलोकि संधि,
बीरता सुहाति मोहिं 'पूरन' अनंद की।
रूप देस एकै रङ्ग राजै उजियारी चारु,
जोबन के सूरज की सैसव के चन्द की॥ २॥

छाई अरुनाई तरुनाई की सुहाई अङ्ग,
भानु को प्रभात सोह्यो अरुन उजेरो है।
मन तें पराने बालपन के सरल खेल,
हाल सों बिहायो लखौ पंछिन बसेरो है॥
'पूरन' अतन तेज आतप सरस ह्वैहै,
चन्द सिसुता को तिमि मन्द होत हेरो है।

सखियो दुपहरी में जानियो अबेरो जनि,
जोबन के ग्रीषम को जोइए सबेरो है ॥ ३ ॥

नवल सुर-बधू वा, मैनका, मंजुघोषा,
कुसुमशरचमू वा उर्वशी पूर्ण शोभा।
अहितिय कमनीया, काम की कामिनी वा,
रजनिपति-कला वा चञ्चला सोभ-सीवा ॥
नव रतन-प्रभा वा रूप ही की छटा है,
कमल-विपिन-सोभा डोलती कै धरा पै ?
कल कनकलता है चारु कै चम्पमाला,
छबि-उदधि-रमा, कै राजती राज-बाला ? ४ ॥

नाइन बुलाइ अङ्ग अङ्ग उबटाय न्हाय,
जावक दिवाय पग मेंहदी रचाई है।
कज्जल कलित करि लोचन अनोखे चोखे,
बन्दन की बिन्दी बाल भाल पै लगाई है ॥
चारु मखतूल ताग-रुचि सों गुँधाय बेनी,
सुन्दर अनूप माँग मोतिन भराई है।
तारन की बाँधि कै कतार नीके तारापति,
मानहुँ नवीन कीन्हीं तम पै चढ़ाई है ॥ ५ ॥

साजे आज नख-सिख रुचिर सिङ्गार प्यारी,
अंग अंग भूषनन सोभा सरसाई है।
बिमल बदन के समीप त्यों बिसाल स्याम,
'पूरन' अलक की झलक छबि छाई है ॥

मुख पै सजे हैं चारु गहने प्रसूनन के,
माँगहू पै फूलन की सुखमा सुहाई है।
छाया चन्द-मण्डल की मानौ निज बानन सों,
कीन्ही मैन सैन रैन 'चंद' पै चढ़ाई है॥ ६ ॥
बैठी है सिँगार साजि प्यारी सुखमा अपार,
अङ्ग अङ्ग भूखन बसन की निकाई है।
लाल जड़ी चौकी बाल उर में बिसाल राजै,
'पूरन' अमन्द तासु झलक सुहाई है॥
ताही पै सुमन चारु भामिनि के केसन तें,
झरत बिलोकि बेस उपमा सुनाई है।
'तम' की सरन बैठि मारि मारि बानन सों,
कीन्हीं कुसुमायुध ने भानु पै चढ़ाई है॥ ७ ॥
पीतम मिलन की सोहाग-भरी आई घरी,
प्यारी अनुराग-भरे, हिये हरखाई है।
सङ्ग की सहेलिन की मानति सकुच तौ हूँ,
जानि तिन्हें आपनी गँवाई दुचिताई है॥
यदपि मयङ्क-मुखी करति अनेक सङ्क,
देत यह अवसर न एक सो जनाई है।
'पूरन' दरस-अभिलासी ह्वै रही है बाल,
कीन्हीं रतिराज आज लाज पै चढ़ाई है॥ ८ ॥
चन्दमुखी हीरन के भूषन अमंद धारे,
मोतिन किनारी वारी सारी चारु धारी है।

जोबन की ज्योति तैसी रूप की है बेस बनी,
जाति ब्रजचन्द सों मिलन हेतु प्यारी है॥
'पूरन' जू जामिनी में कौतुक अनोखो भयो,
जावै कुञ्जबन ह्वै सिधारी सुकुमारी है।
भोर जानी चोरन ने, मोरन तड़ित जानी,
समुझी चकोरन ने चन्द उजियारी है॥ ९॥
लाली जेहि बाला के अधर की अमन्द चारु,
बिंबा फल विद्रुम बन्धूक को लजावती।
जाके मृदु मधुर रसीले प्रिय बैनन की,
बीना पिकी कोऊ समता को नहीं पावती॥
प्रेम सों पिया सों बतरात सोई चन्द्रमुखी,
सुखमा बिलोकि मन उपमा सुहावती।
छाय चन्द्र मण्डल के बीच अरुनारी घटा,
मन्द मन्द 'पूरन' पियूस बरसावती॥ १०॥
गजबल धाम जे सघन घनश्याम छाये,
हाय बल धावत प्रचण्ड जो बयारी है।
तुङ्ग तरु रथ हैं बलाक दल पैदल हैं,
घोर धुनि दुन्दुभि बजत जोर न्यारी है॥
बूँदी की कटारी सुरचाप असि चञ्चला है,
करखा पपीहा पिक मोर शोर भारी है।
मानगढ़ तोरिबे को आली मिस पावस के,
मैन नृप सैन चतुरङ्गिनी सँवारी है॥ ११॥

——

भक्ति और ज्ञान

दृग मोर के पङ्ख हैं जौन लगे, सुर सन्तन दर्श बिधानन में।
शिर निष्फल श्रीफल मानो जोई, न नमै हरि पावन ध्यानन में ॥
रसना बिन राम के चाम निरी, कर काठ उठै जो न दानन में।
अहि बाँबी समान है व्यर्थ नहीं, भगवान कथा जिन कानन में ॥ १ ॥

सुरंग प्रसूनन की सुखमा सुच, प्रात दिनेश को तेज बिभाग।
बिरञ्च रजोगुन सोम गिरासर, नारिन हू को अमन्द सोहाग ॥
सुमङ्गल मङ्गल लाल प्रभा, रँग लाल जितो लखिए भरो भाग।
सबै जग भूरि सो पूरि रह्यो, परिपूरन श्री हरि को अनुराग ॥ २ ॥

चकोर चहै जिमि 'पूरन' चन्दहि, चन्दन को जिमि चाहत नाग,
पतङ्ग को दीपक जैसे सुहाय, पिकै प्रिय जैसे रसाल को बाग।
प्रभात रुचै चकवान यथा, रमनी कुल चाहत जैसे सोहाग,
करैं नित मो मन भृङ्ग तथा, हरि के पद-कंजन में अनुराग ॥ ३ ॥

सुखदायक धर्म के मारग को तजि मन्द अभागो भगे सो भगे,
दुखदाई महा भ्रमजालन ते, जग मूढ़ अजान ठगे सो ठगे।
अधिकारी अनन्द के 'पूरन' जू, प्रभु के पद प्रेम पगे सो पगे,
हरि-भक्त उपासना-पोत चढ़े, भवसागर पार लगे सो लगे ॥ ४ ॥

कोऊ सोत बतावत कंजन में, कोउ गावत सावन को जल है,
कोउ सेवत सेवती कन्द अनार, तुषार को सेवै कोऊ थल है।

अब ग्रीषम भीषम में परिकै वृथा चन्दन चन्दहु को बल है,
हरि-प्रेम-सुधा बिन 'पूरन' जू, नर-हीतल होत न सीतल है ॥ ५ ॥

सजि लीजिए हार सरोजन के, चहै पीजिए जो हिम को जल है,
चहै न्हाइए अमृत के सर में, चहै खाइए जौन सुधा फल है।
निगमागम 'पूरन' टेरि कहै, बृथा चन्दन चाँदनी को बल है,
हरि के पद-पंकज धारे बिना, नर-हीतल होत न शीतल है ॥ ६ ॥

ब्रह्म-विज्ञान

मानुष देह धरी तो सुनौ, शुभ कर्मन ही को बनी यह खास है;
कर्म बने नर धर्म रहै, परिणाम नहीं तो महादुख रास है।
भूलि न याहि करो अपवित्र, सुनौ यह 'पूरन' मर्म प्रकास है,
देह नहीं यह देवल है, जगदीश को यामें रहे नित बास है ॥ १ ॥

बैन कहै बिन आनन ही अरु, नैन बिना तिहुँ लोक को भास है;
कर्म करै कर-हीन सबै बिन पाँव चलै नहिं नेक प्रयास है।
छै रस चाखै बिना रसना, बिन अङ्ग निरन्तर ही छबि रास है,
नाक बिना नित बास लहै, ब्रह्मांडहु तासु अखण्ड सुबास है ॥ २ ॥

आतमा सच्चिदानंद है 'पूरण', बिश्व में ताको अखण्ड निवास है;
माया के सङ्ग सोहै परमेश्वर, पै तऊ ताको सुछन्द बिलास है।
जीव है बुद्धि में ताहि को सत्त्व, सुबोध बिना ही भयो दुखरास है,
जीव के हेत ये देह लिबास है, देह को जैसे लिबास में बास है ॥ ३ ॥

बाणी में अनल ह्वै के इन्द्र ह्वै के हाथन में,
विष्णु ह्वै कै पावन में सत्ता को बिभास है।

जनन में प्रजापति अधो माँहि मृत्यु सोई,
बोलै गहै चलै रमै त्यागै अनायास है ॥
श्रवण दिगीश को पवन को त्वचा में बल,
नैनन में सूरज के बल सो प्रकास है।
सोई है वरुण रसना में बस्यो 'पूरन' है,
सोई पृथ्वी ह्वै करै नासा माहिं वास है ॥ ४ ॥

कीन्हें शुभ कर्म शुद्ध अन्तःकरण होत,
यह उपदेश श्रुति करत प्रकास है।
सोई भगवती पुनि 'पूरन' सुनाय कहै,
ज्ञान बिन कैसहू न होवै मनोनास है ॥
कीजिए सकल कर्म त्यागिए स्वधर्म को न,
स्वस्थ को मर्म भरो एक ही सुपास है।
ब्रह्म की उपासना की पास है दवाई जाके,
ताकी नहीं बाकी रहै बासना की बास है ॥ ५ ॥

जा ही दिनराज के प्रकाश में लख्यो है सब,
ताही को लख्यो न अचरज ए महान है।
बोलत बतात दिन-रात तौ हूँ पूछत हौ,
सचमुच मुख में हमारे का जबान है ॥
खोजत हौ जाको घर बाहर, अखण्ड सो तो,
आतमा तुम्हारे घर ही में राजमान है;
सच्चित स्वरूपवारो 'पूरन' परम प्यारो,
सोई है जहान माहिं ताही में जहान है ॥ ६ ॥

चाँदनी को घाम जान्यो सूधो ताहि बाम जान्यो,
जान्यो दुःखधाम जौन सुख को निधान है।
जूड़े को तपायो मान्यो सुखी को सतायो जान्यो,
अपनो परायो मान्यो ह्वै रह्यौ अजान है॥
लै कर सहारो सतसङ्ग श्रुति सीखवारो,
ब्रह्मरूपी रस्सी को न लीनो पहचान है।
ताही ते द्दगन तेरे भय को करनहारो,
बगरो भुजङ्ग ऐसो सगरो जहान है॥ ७॥
सुख दुख भोगी कैसे आतमा प्रतीत होत,
यद्यपि न काहू भाँति ब्यापै ताहि माया है।
जैसे जल भाजन में नभ प्रतिबिम्ब तहाँ,
जीव प्रतिबिम्ब नभ आतमा अमाया है॥
बासना पवन जल बुद्धि को डुलावै देखो,
भेद खुल जावै जु पै शङ्कर की दाया है।
सूरज वा नभ में न किञ्चित बिकार होत,
यद्यपि दिखाई देत डावाँडोल काया है॥ ८॥
कहीं बारबाला करैं चैन का निबाला कहीं,
मद का पियाला देखि पानी मुँह आया है।
कहीं देखि वैभव पराया बौखलाया चित,
कहीं भाव बैरी कहीं मित्र का समाया है॥
तृष्णा की तरङ्गिनी में मज्जन कहीं है भूरि,
बासना भुजङ्गिनी ने कहीं लहराया है।

प्राणियों के फाँसने को रज तम डोरवाला,
चारों ओर जाल कलिकाल ने बिछाया है ॥ ९ ॥
प्रीत मणिमाल की न भीति है भुजङ्गम की,
शत्रु पर क्रोध है न मित्र पर दाया है ।
मित्रता सुधा सो है न बैर है हलाहल सों,
पदवी प्रजा की तैसो भूपति को पाया है ॥
कानन में बास तैसे कलित मकानन में,
अंबर बलित सो दिगम्बर को छाया है ।
'पूरन' अनन्द माहिं लीन ज्ञान योगिन को,
गरमी की धूप तैसी सरदो की छाया है ॥ १० ॥
कोऊ पाट ही के नीके अंबर जरी के सजे,
कोऊ दुख मगन नगन दीन-काया है ।
कोऊ स्वाद पूरे खात ब्यंजन सुधा सो रूरे,
काहू पै बिधाता की न साग हू की दाया है ॥
कहूँ शोक छायो कहूँ आनंद को पायो रङ्ग,
कोऊ अति छुद्र कोऊ आसमान पाया है ।
'पूरन' बिचित्र हैं चरित्र भूमिमण्डल के,
रामजी की माया कहीं धूप कहीं छाया है ॥ ११ ॥
कञ्चन को कङ्कन ज्यों पृथक न कञ्चन सों,
तैसे दयावान सों न भिन्न होत दाया है ।
पवन को बेग जैसे भिन्न है पवन सो न,
जैसे पञ्चभूतन सों बिलग न काया है ॥

याही भाँति 'पूरन' जू यद्यपि कहत लोग,
व्यापक जगत माँहि ब्रह्म संग माया है।
सार को बिचारै माया ब्रह्म सों बिलग नाहीं,
होत ज्यों पुरुष सों बिलग नाहिं छाया है॥ १२॥
सोखो व्यभिचार लघु बैस में अनारिन सों,
भये वारनारिन के चेरे बिन दाम के।
बुद्धि बल पौरुष गँवाय साल द्वैक ही में,
रोगन के बोझ बहु झेले बस काम के॥
व्याह के न नेक उतसाह मन माहिं माने,
लखि पछताने रङ्ग रूप निज बाम के।
प्रथम अनीति करि सम्पति सों द्रोह ठानि,
मूरख रहे ना निज कामिनि के काम के॥ १३॥
सोई है निकुंज सोई पुंज चारु फूलन के,
सोई सर कुण्ड सोई नीर बिमलाई है।
सोइ गोप गोपी सोई 'पूरन' बिलास हास,
सोई ब्रह्म भूमि सोई समै सुघराई है॥
सबको है सार सोई और है नहीं सो कछु,
भूमि है न बास है न लोग न लुगाई है।
नीर है न कुण्ड है न कुंज है न पुष्प-पुंज,
खेत है न बारी है न बैल है न गाई है॥ १४॥
काज सब साजै गढ़ि स्वारथ की बातें नितै,
छलत दुनी को नाहिं रञ्चक सकात है।

भोग न विषै की तैसे रटत कहानी रहै,
बाचा के रटन से गँवावै दिन-रात है ॥
'पूरन' भनत तू अनारी मूढ़ प्राणी हाय,
तजत न खोटी बानि धोका बड़ खात है ।
जीवन के दाता जगत्राता राम जू के यश,
रटत तिहारो कस रसना पिरात है ॥ १५ ॥
बानी वेद गणप अनन्त जो बखानी नितै,
हितै लिखी ब्रह्मा महाश्रम को प्रकास है ।
उत्तर औ दक्खिन औ पूरब औ पच्छिम हू,
ऊपर औ नीचे छोर नाहीं कहुँ भास है ॥
सर्वसक्तिमान करुणा की भगवान ईश,
महिमा बखानन को कौन सो सुपास है ।
'पूरन' मयङ्क रवि तारे अङ्क आखर हैं,
रावरो बिरद पत्र बापुरो अकास है ॥ १६ ॥
तू ही है तरुन तरु बेलो है ललित तू ही,
सुखमा कलित तू ही सुमन प्रधानन में ।
सैारभ सुरङ्ग तू ही भ्रमर बिहङ्ग तू ही,
सैर की उमङ्ग तू ही शोर सार गानन में ॥
त्रिबिध समीर तू ही जन्तुन की भीर तू ही,
नदी सर नीर तू ही जड़ता चटानन में ।
सुखमा अपार तू ही ऋतु को बहार तू ही,
सार तू ही 'पूरन' जगत रूप कानन में ॥ १७ ॥

लोभ है सघनताई तृसना अगाध घाटी,
मन्द मति काई छाई जड़ता चटानन में।
मोह है प्रबल सिंह बृक है अधम कोह,
द्रोह है मतंग दन्त पाप ता के आनन में॥
अन्ध कूप अहङ्कार माया घोर अन्धकार,
बासना कुपन्थ भरै भीत भरि प्रानन में।
काम है कुटिल ब्याधा बाधा अति देनहारो,
कामिनि है नागिनि जगत भीम कानन में॥ १८॥
मोह को प्रबल जाल चहुँधा बिछो है यामें,
बैठो काल ब्याधा रूप मरिबे के ध्यानन में।
वाही मतिमन्द अन्ध खग को बिनाश होत,
आय कै फँसत जौन लोभि-लोभि दानन में॥
'पूरन' बिचार तेरो सुहित सुनाऊँ तोहिं,
सीख जौन पाई निगमागम पुरानन में।
मेरे जीव पंछी मत फँसिए सयाने ए रे,
भोग के कपट दाने फैले लोक-कानन में॥ १९॥
पावक जरावै नहीं पवन सुखावै नहीं,
सीतहू गलावै नहीं ऐसो अबिकारी है।
फन्दा ताहि फाँसै नहीं गाँसी ताहि गाँसै नहीं,
नासै नहीं काल ऐसो अचल बिहारी है॥
'पूरन' है सचित है आनँद है अच्युत है,
देह में बृथा क्यों ताहि लेखत अनारी है।

गौर है न श्याम है, न सूधो है न बाम जीव,
लघु है न भारी है पुरुष है न नारी है ॥ २० ॥

नर को लहि सुन्दर दिव्य शरीर, अरे कछु चेत करो मन में,
पर 'पूरन' प्रेम करो हरि को, चित देहु न नेक विषयगन में।
न त बासना अन्त में दैहै दगा, कहुँ फाँसिहै आतमा को ग्वन में,
जड़ भर्त यथा मृग-जन्म लह्यो, मृग-सावक प्रीति के कानन में ॥२१॥

जैसे उपाधि को पाय कै आतमा, लोक में आय कै जीव कहावै,
तैसे ही माया की पाय उपाधि, को आतमा ईश्वर नामहिं पावै।
ईश्वर जीव में भेद जँचै, तब लौं जग जन्म औ मृत्यु सतावै,
ताहि सों 'पूरन' ईश्वर जीव को, बुद्धि में भेद न आवन पावै ॥२२॥

जो पै मीत मेरे नारि मन में बसी है तेरे,
काहे को अनारी तैने सारता बिसारी है।
केशन की कालिमा में लालिमा में होठन की,
ब्रह्म ही की 'पूरन' जू चारुता निहारी है॥
हाँसी बोलचाल में हँसी में चालढाल हू में,
लीला में रँगीला सोई सुन्दर बिहारी है।
अङ्गन में ब्रह्म भ्रुव-भङ्गन में ब्रह्म सोहै,
रूप उजियारी सारी ब्रह्ममयी नारी है ॥ २३ ॥

जो कुछ लखात वा सुनात व बिचारो जात,
जहाँ लौं निदान अनुमान है सो माया है।
'पूरन' जो ब्रह्म जानिबे की लालसा है तोहिं,
ऐसी उर ठानि परमातमा अमाया है॥

आनँद है ज्ञान है प्रमान है सनातन है,
बुद्धि है न तन है न प्राण है न काया है।
सुख है न दुःख है न प्रीति है न मीत है,
रूप है न काल है न धूप है न छाया है ॥ २४ ॥
बारो पितु मातु को दुलारो तात बन्धुन को,
गोद में प्रमोद में सँवारी गई काया है;
बालक है अजान सोई आज तू अकेले आन,
खेल्यो या मकान में न जानी कछु माया है।
दीप को न देखै तम प्रभा की न लेखै भेद,
देखि भयभीत तोहिं लागै मोहिं दाया है;
औचक ही भौचक भयो है करतूत हीन,
सोच तौ सपूत अरे भूत है कि छाया है ॥२५॥

गीता-गुण-गान

भारत में पारथ को कृष्ण उपदेस्यो ज्ञान,
पावन सुखद सो रहस्य सब गावती।
नासिनी कुमोह कोह ममता मदादि दोष,
ब्रह्म की अगाध ताकी थाह को लहावती॥
छलकत जाके प्रति बचन में सान्त रस,
मारग परम निरबान को बतावती;
गीता शान्तिदायिनी मुमुक्षुन के औनन में,
'पूरन' जू आनँद पियूष बरसावती ॥२६॥

सोई भ्रम बात भूरि संकट करनहारो,
    योनिन अनेक में जो बासना भ्रमावती;
आतप त्रैताप धूरि ममता जलाक पाय,
    बिषय बिसूचिका त्रिकाल डरपावती।
जरत बृथा ही भव ग्रीसम बिपम दीन,
    लहत न काहू जीव सान्ति मनभावती;
'पूरन' प्रसिद्ध घनस्याम की मधुर बानी,
    गीता मेघमाला ह्वै पियूष बरसावती ॥२७॥
धर्म को बिसारि गति धारि कै तमीचर की,
    तामस तिमिर में भ्रमत क्यों बिहाला है;
'पूरन' प्रकाशमान पावन परम ज्योति,
    ध्यावरे अनारी जग जासों उजियाला है।
बासना प्रबल तें न पैहै नत पार कैहूँ,
    मेटि बुद्धि जीवन की देत जो कसाला है;
ग्रीसम प्रचण्ड घोर मारुत झँकोर आगे,
    जैसे ठहरात नाहिं दीपन की माला है ॥२८॥
बासना प्रचंड पौन जीव ममतादि जामें,
    भव को पयोनिधि अगाध बिकराला है।
तरन-चहै तू छुद्र प्राणी तो रमेसैं ध्याव,
    ध्यान जलयान जाको 'पूरन' बिसाला है॥
खेवट उपासना सहारे पार लागन को,
    सबमें विशेष जो सुपास एक आला है।

माया की अँधेरी में कुपन्थ की चटान पै हू,
गीता की प्रकाशमान दीपन की माला है ॥ २९ ॥
भाव के निदाघ में जरत क्यों अनारी जीव,
पैहै सुख धर्म धाम सीतल सनातन में।
तीन ताप आतप तपत चित लावै क्यों न,
ध्यान सुख सेज छाई भक्ति कञ्ज पातन में ॥
तृसना तृषा सों रहै आकुल वृथा ही मूढ़,
रीझ रस सीरे सान्त ग्रन्थन पुरातन में।
लहु बिसराम खस खाने गुरु बातन में,
दुःख क्यों सहत भ्रम घोर भ्रम बातन में ॥ ३० ॥
भेद जीव ईश को बतावै सरसावै ज्ञान,
प्रीति जो करावै ब्रह्म 'पूरन' सनातन में।
प्रकृति की संज्ञा दरसावै कै बिदित पञ्च-
तत्त्व को प्रबन्ध जौन जीवन के गातन में ॥
सेत भवसागर की हेत परमानँद की है,
पावन प्रसिद्ध जोई ग्रन्थन पुरातन में।
पीजै सुधा सान्तरस मन को लगाव ताही,
भगवतगीता परमातमा की बातन में ॥ ३१ ॥

रम्भा-शुक-संवाद

बीथी बीथी आम की कुञ्ज भावै,
कुञ्जै कुञ्जै कोकिला मत्त गावै।
गाये गाये मानिनो मान जावै,
जातै जातै काम को रङ्ग आवै ॥ १ ॥

बीथो बीथी साधु को सङ्ग पैए,
संगै संगै कृष्ण की कीर्ति गैए।
गाये गाये एकताई प्रकासै;
एकै एकै सच्चिदानन्द भासै ॥ २ ॥

धामै धामै हेम की बेलि डोलै,
बेली बेली पूर्णिमा चन्द्र बोलै।
चन्दै चन्दै मीन की मञ्जु जोरी,
जोरी जोरी मैन क्रीड़ा अथोरी ॥ ३ ॥

धामै धामै रत्न-वेदी सुहावैं,
वेदी वेदी भक्त-संवाद भावैं।
बादै ही सों बोध चित्तै प्रकासै,
बोधै पाये शम्भु की मूर्ति भासै ॥ ४ ॥

श्यामा कामा सुन्दरी रूपवारी,
गोरी भोरी काम की सी सँवारी।

वाकी बाँहैं आपने कण्ठ डारी,
भेंटी नाहीं तो वृथा देह धारी ॥ ५ ॥

लक्ष्मी-पी की साँवरी मूर्ति प्यारी,
देवी देवै मोद की देनहारी।
चन्द्राभासी मन्द मुसक्यानवारी,
ध्याई नाहीं, तौ वृथा देह धारी ॥ ६ ॥

बसन्त में पाय प्रसून-कुंजैं,
सुगन्ध पै मोहि मलिन्द गुंजैं।
विलास ऐसे थल अङ्गना को,
लहै वही भाग विशाल जाको ॥ ७ ॥

प्रसून पीताम्बर माल राजैं,
भृङ्गावली केश रसाल भ्राजैं।
बसन्त में यों हरि मूर्ति ध्यावैं,
तो सन्त आनन्द अनन्त पावैं ॥ ८ ॥

हेमन्त में बाल-मयङ्क ऐसी,
है अङ्क में तो फिर सीत कैसी।
पिया प्रिया की बतियाँ सुहावैं,
आनन्द-भीनो रतियाँ बितावैं ॥ ९ ॥

विहाय जो ध्यान प्रमोदकारी;
खोवै विषै में सब रात भारी।

ता हेतु लीन्हें जमदूत फाँसी।
सचेत होवैं वनिता विलासी ॥ १० ॥

सुवर्णवर्णी तरुणी छबीली;
प्रिया रँगीली सुमुखी रसाली।
जो प्रेम ऐसा नहिं वाम को है;
तारुण्य तो ये केहि काम को है ॥ ११ ॥

होवै जरा में बल-बुद्धि हानी;
मिली तपस्या हित ही जवानी।
उद्योग नाहीं शुभ काम को है;
निकाम तो ये तनु चाम को है ॥ १२ ॥

कुरङ्ग-सी जासु चितौन प्यारी;
सुरङ्ग - बिम्बाधर - जुग्मवारी।
अनङ्ग की सी सुकुमार नारी;
न सङ्ग होवै बिन भाग भारी ॥ १३ ॥

जाकी लुनाई जग में बसी है;
दसौ दिसा में सुखमा लसी है।
पुनीत पूरी महिमा गँसी है;
बिना भजे ताहि सबै हँसी है ॥ १४ ॥

सुहावनी गोल कपोलवारी;
बुलाक वाली नथ लोलवारी।

सुकामिना काम किलोल वारी;
मिलै बड़े भाग समोल नारी॥ १५॥

महेश ही को दिन-रैन ध्याना,
महेश ही पै मन ये दिवाना।
महेश ही जोग विचार ज्ञाना;
"अमोल" तो है बस भक्त बाना॥ १६॥

बारा अलङ्कार सिँगार सोरा;
बिलोकि जाके मन होय भोरा।
जो, हाय, स्वीकार करै न वाहि;
ताको अरे, जन्म गयो वृथाहि॥ १७॥

सोरा कला चन्द्र दिनेश बारा;
वारैं गिरा शेष लहैं न पारा।
आनन्द को रूप प्रमोदकारी।
का तासु आगे बनिता बिचारी॥ १८॥

रूरी पूरी बदन द्युति है चन्द्रमा तें सवाई;
नैना-सैना, मदन सर में नाहिं सो तीछनाई।
कारे भारे चिकुर जाके भृङ्ग के मानहारी;
नारी प्यारी नर नहिं रमो तो वृथा देह धारी॥ १९॥

प्यारे प्यारे जुगुल पद हैं पद्म-शोभा-प्रहारी;
सेवै लेवै भरि हिय जिन्हैं सिन्धुजा प्राणवारी।

छाई भाई मुनि-मग हिये जासु प्यारी उज्यारी;
सोई जोई नर नहिं भजै सो वृथा देहधारी ॥२०॥

बामा कामाभिरामा शशिवर-वदना शीलधामा ललामा।
कस्तूरी-चर्चिताङ्गी मदन मदभरी चञ्चला चारु श्यामा॥
बाँकी ऐसी तिया की चितवन चित में, कामना ही जगावै।
नाहीं सन्देह देही वह जग अपनो जन्म यों ही गँवावै ॥२१॥

मज्जा मेदा बसा की अशुचि मल भरी, चाम की तुच्छ थैली।
खोटो नौ छिद्रवारी बहुनसन कसी अस्थि की वस्तु मैली॥
लोहू मूत्रादि जासों बहत बहु सदा, स्रोत दुर्गन्धवारे।
सेवैं सीमा घृणा की नर जग नरकी नीच पापी नकारे ॥२२॥

स्वदेशी कुण्डल

देशी प्यारे भाइयो ! हे भारत-सन्तान !
अपनी माता-भूमि का है कुछ तुमको ध्यान ?
है कुछ तुमको ध्यान ? दशा है उसकी कैसी ?
शोभा देती नहीं किसी को निद्रा ऐसी।
वाजिब है हे मित्र ! तुम्हें भी दूरन्देशी;
सुन लो चारों ओर मचा है शोर "स्वदेशी" ॥ १ ॥
परमेश्वर की भक्ति है मुख्य मनुज का धर्म;
राजभक्ति भी चाहिए सच्ची सहित सुकर्म।
सच्ची सहित सुकर्म देश की भक्ति चाहिए;
पूर्ण भक्ति के लिए पूर्ण आसक्ति चाहिए।
नहिं जो पूर्णासक्ति वृथा है शोर चढ़े स्वर;
है जो पूर्णासक्ति सहायक है परमेश्वर ॥ २ ॥
सरकारी क़ानून का रखकर पूरा ध्यान;
कर सकते हो देश का सभी तरह कल्यान।
सभी तरह कल्यान देश का कर सकते हो;—
करके कुछ उद्योग सोग सब हर सकते हो।
जो हो तुममें जान, आपदा भारी सारी;
हो सकती है दूर, नहीं बाधा सरकारी ॥ ३ ॥

थाली हो जो सामने भोजन से सम्पन्न;
बिना हिलाये हाथ के जाय न मुख में अन्न।
जाय न मुख में अन्न बिना पुरुषार्थ न कुछ हो;
बिना तजे कुछ स्वार्थ सिद्ध परमार्थ न कुछ हो॥
बरसो, गरजो नहीं, धीर की यही प्रणाली;
करो देश का कार्य छोड़कर परसी थाली॥ ४॥
दायक सब आनन्द का सदा सहायक बन्धु;
धन भारत का क्या हुआ, हे करुणा के सिन्धु!
हे करुणा के सिन्धु पुनः सो सम्पति दीजै;
देकर निधि सुखमूल सुखी भारत को कीजै।
भरिए भारत भवन भूरिधन, त्रिभुवननायक!
सकल-अमङ्गल-हरण, शरणवर, मङ्गलदायक॥ ५॥
धन के होते सब मिलै बल, विद्या भरपूर,
धन से होते हैं सकल जग के सङ्कट चूर।
जग के सङ्कट चूर यथा कोल्हू में घानी,
धन है जन का प्राण वृक्ष को जैसे पानी।
हे त्रिभुवन के धनी! परमधन निर्धन जन के,
है भारत अति दीन लीन दुख में बिन धन के॥ ६॥
यथा चन्द बिन जामिनी भवन भामिनीहीन,
भारत लक्ष्मी बिन तथा है सूना अति दीन।
है सूना अति दीन सम्पदा सुख से रीता,
है आश्चर्य अपार कि है वह कैसे जीता॥

सुनौ रमापति! हाय! प्रजा धनहीन रैन-दिन,
हैं अति व्याकुल बृन्द कुमुद के यथा चन्द बिन ॥ ७ ॥
नहीं धनुष का, चक्र का, नहीं शूल का काम,
नहीं गदा का काम है, नहीं विकट संग्राम।
नहीं विकट संग्राम निकट बैरी नहिं कोई,
है बस भारत-प्रजा घोर निद्रा में सोई॥
हरिए किसी प्रकार हरे हर! आलस उसका,
वाम हस्त का काम काम नहिं बान-धनुष का ॥ ८ ॥
'पूरन' भारतवर्ष के सेवा प्रेमी लोग,
कर सकते हैं दूर दुख ठानैं यदि उद्योग।
ठानैं यदि उद्योग कलह तजकर आपुस का,
नाना विध उपकार अभी कर डालें उसका॥
करता है निर्देश जगत का स्वामी 'पूरन',
करैं सुजन उद्योग, कामना होगी पूरन ॥ ९ ॥
कह दो भारतवर्ष के भक्तों से तुम आज,
अवसर यह अनुकूल है करने को शुभ काज।
करने को शुभ काज शीघ्र उद्यत हो जावें,
न्यायशील-नृप-विहित रीति का लाभ उठावें॥
कर्म-विपाक-स्वरूप राजशासन है कह दो,
है श्री प्रभु का तुम्हें यही अनुशासन कह दो ॥ १० ॥
हिलता, मिलता, नाति लै इंग्लिशजन के साथ;
करै यत्न तो हो सही, भारतवर्ष सनाथ।

भारतवर्ष सनाथ हुआ जानौ फिर जानौ;
यदि कुछ भी अनुकूल हवा का रुख पहचानौ ॥
उसकी इच्छा बिना कहाँ यह अवसर मिलता;
पत्ता भी तो नहीं हुक्म बिन उसके हिलता ॥ ११ ॥
तन, मन, धन से देश का करैं लोग उपकार;
विद्या, पौरुष, नीति का कर पूरा व्यवहार ।
कर पूरा व्यवहार धर्म का काम बनावैं;
अग्रगण्यजन विहित प्रथा को चित में लावैं ॥
पृथक् पृथक् निज स्वार्थ भुलावैं सच्चेपन में;
देश-लाभ को अधिक जानकर तन-मन-धन से ॥ १२ ॥
सेवा तन से जानिए, हाथों उत्तम लेख;
कानों सुनना हित वचन, आँखों दुनियाँ देख ।
आँखों दुनियाँ देख ऊँच अरु नीच परखना;
पैरों से कुछ भ्रमण चरण समथल पर रखना ॥
मुख से सुठ उपदेश पार हो जिसमें खेवा;
सज्जन! है बस यही देश की तन से सेवा ॥ १३ ॥
मन की सेवा के सुनो, मुख्य चिह्न हैं चार;
१ देश-दशा का मनन शुभ २ उन्नति-यत्न-विचार ।
२ उन्नति-यत्न-विचार-सोचना नियम कार्य का;
४ कार्य-समय विश्वास, विदित जो धर्म आर्य का ॥
मिलती है इन गुणों सफलता-रूपी मेवा;
करौ देश के लिए समर्पित मन की सेवा ॥ १४ ॥

बिमल बगुलन पाँति मनहु विशाल मुक्तावली।
चन्द्रहास समान चमकत चञ्चला त्यों भली॥

नील नीरद सुभग सुर धनु बलित सोभा धाम।
ललित मनु बनमाल धारे लसत श्री घनश्याम॥
कूप कुण्ड गँभीर सरवर नीर लाग्यो भरन।
नदी नद उफनान लागे लगे झरने झरन॥ १५॥

रटन लागे विविध दादुर रूचत चातक बचन।
कूक छावत मुदित कानन लगे केकी नचन॥
मेघ गरजत मनहु पावस भूप को दल सबल।
बिजय-दुन्दुभि हनत जग में छीन ग्रीषम अमल॥१६॥

मारतण्ड तेज जल सागर को तपावै।
ताके समीर परमाणु उड़ाय धावै॥
पावै प्रसङ्ग जहँ शीतल, मेघ छावै।
या भाँति ईश सब देश कृषी सिंचावै॥
नाना प्रकार उपजैं फल धान्य होवै।
कासार कूप नद में जल भूरि सोहै॥
सो धन्य धन्य हरि पालन शील स्वामी।
जो देत 'पूर्ण' विधि पुत्रन अन्न पानी॥ १७॥

लँगोटे कसैं जाँघिये त्यों चढ़ावैं।
अखाड़े खड़े इष्टदेवै मनावैं॥

गुण उपकारी नहीं दूसरा एक दिली सा;
है भ्राता सब मनुज, दे गया सम्मति ईसा ॥ १८ ॥
सौदागर वर, बैंकर, मालगुज़ार, वकील;
ज़िमींदार, देशाधिपति, प्रोफ़ेसर शुभशील।
प्रोफ़ेसर शुभशील, एडिटर, मिल-अधिकारी;
मुंसिफ़, जज, डेपुटी, आदि नौकर सरकारी।
रहा खुलासा यही, किया सौ बार मसौदा;
बनै स्वदेशी तभी होय जब सबका सौदा ॥ १९ ॥
पुर्ज़े किसी मशीन के हों कहने को साठ;
बिगड़े उनमें एक तो हो सब बाराबाठ।
हों सब बाराबाठ बन्द हो चलना कल का,
छोटा हो या बड़ा किसी को कहो न हलका।
है यह देश मशीन, लोग सब दर्जे दर्ज;
चलें मेल के साथ उड़ें क्यों पुर्ज़े पुर्ज़े ॥ २० ॥
धर्म-सनातन-रत कहाँ बैठे हो तुम हाय?
पूज्य सनातन देश का सोच समस्त विहाय।
सोच समस्त विहाय धर्म का पालन भूले;
देश दशा को भूल, भला किस्मत में फूले!
यदि न देश में रही सुखद सम्पदा पुरातन;
सोचो, किस आधार रहेगा धर्म सनातन ॥ २१ ॥
आर्यसमाजी! आर्यवत् आर्यदेश के काज;
निज प्रयत्न अर्पण करौ, सार्थक करौ समाज।

सार्थक करौ समाज, देश की दशा बनाओ;
"दया"-युक्त "आनन्द" सहित धीरता दिखाओ।
अति हित का मैदान बीच दौड़ाओ बाजी;
हो तुम सच्चे तभी, मित्रगण! आर्यसमाजी ॥ २२ ॥
दामनगीर निफ़ाक़ है, हाय हिन्द! अफ़सोस;
बिगड़ रहा अख़लाक़ है, वाय हिन्द! अफ़सोस।
वाय हिन्द! अफ़सोस! ज़माना कैसा आया?
जिसने करके सितम भाइयों को लड़वाया।
मुसलमान हिन्दुओ! वही है क़ौमी दुश्मन;
जुदा जुदा जो करै फाड़कर चोली दामन ॥ २३ ॥
बरस कई सौ पेशतर की हक़ ने तहरीक़;
दो भाई बिछुरे हुए हो जावें नज़दीक।
हो जावें नज़दीक हिन्द में दोनों मिलकर;
लड़े भिड़े फिर एक हुए कर मेल बराबर।
यह दोनों का साथ रज़ाए रब से समझौ;
इन दोनों को मिले हुए अब बरस कई सौ ॥ २४ ॥
बन्दे हौं सब एक के, नहीं बहस दरकार;
है सब क़ौमों का वही खालिक़ औ करतार।
खालिक़ औ करतार वही मालिक परमेश्वर;
है ज़बान का भेद, नहीं मानो में अन्तर।
हो उसके बरअक्स करौ मत चर्चे गन्दे;
कहकर "राम", "रहीम" मेल रक्खौ सब बन्दे ॥ २५ ॥

पानी पीना देश का खाना देशी अन्न,
निर्मल देशी रुधिर से नस नस हो सम्पन्न।
नस नस हो सम्पन्न तुम्हारी उसी रुधिर से,
हृदय, यकृत, सर्वांग, नखों तक लेकर शिर से ॥
यदि न देश-हित किया, कहेंगे सब "अभिमानी,
शुद्ध नहीं तब रक्त, नहीं तुझमें कुछ पानी" ॥ २६ ॥
सपना हो तो देश के हित ही का हो, मित्र,
गाना हो तो देश के हित का गीत पवित्र।
हित का गीत पवित्र प्रेम-बानी से गाओ,
रोना हो तो देश-हेतु ही अश्रु बहाओ ॥
देश! देश! हा देश! समझ बेगाना अपना,
रहे झोपड़ी बीच महल का देखें सपना ॥ २७ ॥
भैंसी की जब मर गइ पड़िया, चतुर अहीर,
कम्मल की पड़िया दिखा लगा काढ़ने छीर।
लगा काढ़ने छीर, भैंस भेसड़ बेचारी,
यही समझती रही यही पुत्री है प्यारी।
नहीं स्वदेशी बन्धु, बात यह ऐसी वैसी,
हो मानुष तुम सही किन्तु हो सोई भैंसी ॥ २८ ॥
खेती है इस देश में सब सम्पत की मूल,
कोहनूर इस कोष में है कपास के फूल।
है कपास के फूल सुभग सत् के रँगवाले,
रखते हैं अँग-लाज इन्हीं से गोरे-काले।

अपनाओ तुम उसे, तुम्हारी मति जो चेती,
हरी-भरी हो जाय अभी भारत की खेती ॥ २९ ॥
लीजै विमल कपास को उटवा चरखी-बीच,
धुनकाकर रँहटे चढ़ा, तार महीने खींच।
तार महीने खींच वस्त्र वर पहनो बुनकर,
दिया साधु का उदाहरण क्या प्रभु ने चुनकर ॥
जग-स्वारथ के हेतु देह निज अर्पण कीजै,
प्रिय कपास से यहाँ, मित्रगण, शिक्षा लीजै ॥ ३० ॥
चींटी, मक्खी शहद की, सभी खोजकर अन्न;
करते हैं लघु जन्तु तक, निज गृह को सम्पन्न।
निज गृह को सम्पन्न करो स्वच्छन्द मनुष्यो;
तजो तजो आलस्य अरे मतिमंद मनुष्यो।
चेत न अब तक हुआ मुसीबत इतनी चक्खी;
भारत की संतान! बने हो चींटी, मक्खी ॥ ३१ ॥
कूकर भरते पेट हैं पर-चरणों पर लेट;
शूकर घूरों घूमकर भर लेते हैं पेट।
भर लेते हैं पेट सभी जिनके है काया;
पुरुषसिंह हैं वही भरैं जो पेट पराया।
ठहरौ, भागौ नहीं, स्वदेशी चर्चा छूकर;
करौ 'पूर्ण' उद्योग, बनौ मत शूकर, कूकर ॥ ३२ ॥
देशी उन्नति ही करै भारत का उद्धार;
देशी उन्नति से बनै, शक्तिमती सरकार।

शक्तिमती सरकार - रूप - शाखा हो जावै;
प्रजा स्वरूपी मूल बली यदि होने पावै।
बिलग न राजा प्रजा, करौ टुक दूरन्देशी;
कहो स्वदेशी जयति, स्वदेशी जयति स्वदेशी ॥ ३३ ॥
गाढ़ा, झोना जो मिलै उसकी ही पोशाक;
कीजै अङ्गीकार तो रहै देश की नाक।
रहै देश की नाक स्वदेशी कपड़े पहने;
हैं ऐसे ही लोग देश के सच्चे गहने।
जिन्हैं नहीं दरकार चिकन योरप का काढ़ा;
तन ढकने से काम गजी होवै या गाढ़ा ॥ ३४ ॥
खारा अपना जल पियो मधुर पराया त्याग;
सीठे को मीठा करै 'पूर्ण' देश-अनुराग।
'पूर्ण' देश-अनुराग, सकल सज्जनो निबाहो;
है जो ह्याँ पर प्राप्त अधिक उससे मत चाहो।
बिना बिदेशी वस्त्र नहीं क्या गुजर तुम्हारा?
काफ़ी है जो मिलै होय गाढ़ा या खारा ॥ ३५ ॥
सङ्गी, साटन, गुलबदन, जाली बूटेदार,
ढाका, पाटन, डोरिया, चिकन अनेक प्रकार।
चिकन अनेक प्रकार, नैनसुख, मलमल आला,
फ़र्द, टूस, कमख़ाब अमीरी क़ीमतवाला।
कोसा कञ्चनबरन, अमौवा नानारङ्गी,
पहनो ह्याँ के बने, बनो भारत के सङ्गी ॥ ३६ ॥

धोती सूता, रेशमी, खन, साड़ी, मण्डील,
बनत, कामदानी, सरज, हे समर्थ शुभशील।
हे समर्थ शुभशील! ज़री से कलित दोशाले,
पहनो बसन अमोल, सितारे, सलमेवाले।
सस्ती, महँगी वस्तु देश में है सब होती,
धेली की या एक मोहर की पहनो धोती ॥ ३७ ॥
कपड़े भारतवर्ष के गये बहुत परदेश,
तव समान उनके वहाँ बनने लगे अशेष।
बनने लगे अशेष देखने में भड़कीले,
सस्ते अरु कमज़ोर मगर सुन्दर, चमकीले॥
खपने लगे तमाम वही सब चिकने-चुपड़े,
हैं ह्याँ की ही नकल सकल परदेशी कपड़े॥ ३८ ॥
मारा है दारिद्र का भरतखण्ड आधीन,
कारीगर बिन जीविका हैं दुःखित अति दीन।
हैं दुःखित अति दीन वस्त्र के बुननेवाले,
धीरे धीरे हुनर समय के हुआ हवाले॥
भरा देश में हाय निकम्मा कपड़ा सारा,
तुमने ही कोरियों, जुलाहों को बस मारा ॥ ३९ ॥
बाक़ी है जो कुछ हुनर है वह भी म्रियमान,
जीवदान कर्त्तव्य है हे भारत-सन्तान।
हे भारत-सन्तान! दया करके यश लेना,
है बेबस बीमार दवा वाजिब है देना।

नहीं देर की जगह ज़ियादा है ना चाका,
करो रहम की नज़र जान अब भी है बाक़ी ॥ ४० ॥
लत्ता, गूदड़ जगत का जीर्ण और अपवित्र;
उससे भी हो धन खड़ा, है व्यापार विचित्र।
है व्यापार विचित्र उसे धो खूँथ खाँथकर;
सूत कात बुन थान, मढ़ें मूढ़ों के सर पर।
खोया सब, हाँ रही, बुद्धि इतनी अलबत्ता;
देकर चाँदी खरी मोल लेते हो लत्ता ॥ ४१ ॥
दे चाँदी लो चीथड़े, है अद्भुत व्यवहार;
भारतवासी गण! कहाँ सीखे तुम व्यापार!
सीखे तुम व्यापार कहाँ यह सत्यानासी;
जिससे तुमको मिली आज निर्धनता खासी।
गलै पसीना लगे मित्र यह वही वसन है;
पूरे बनिये बने द्रव्य गूदड़ पर दै दै ॥ ४२ ॥
दौड़ी भारत से सुमति जा छाई परदेस;
उसके रुचिर प्रकाश का याँ तक हुआ प्रवेश।
याँ तक हुआ प्रवेश गई कुछ नींद हमारी;
मचा स्वदेशी शोर सुजन-मुदकारी भारी।
पर, हीरे की डींग बुरी है पाकर कौड़ी;
मसल न होवै कहीं वही "काता लै दौड़ी" ॥ ४३ ॥
चूड़ी चमकीली विशद परदेशीय विचार;
बनिताओं ने त्याग दी किया बड़ा उपकार।

किया बड़ा उपकार यदपि हैं अबला नारी;
अब देखें कुछ पुरुष-वर्ग करतूत तुम्हारी।
सुनौ! तुम्हारी अगर प्रतिज्ञा रही अधूड़ी;
यही कहेंगे लोग "पहनकर बैठो चूड़ी" ॥ ४४ ॥
चीनी ऊपर चमचमी भीतर अति अपवित्र;
करते हो व्यवहार तुम, है यह बात विचित्र।
है यह बात विचित्र, अरे, निज धर्म बचाओ;
चौपायों का रुधिर, अस्थि अब अधिक न खाओ।
है यह पक्की बात बड़ों की छानी-बीनी;
करौ भूल स्वीकार, करौ मत नुक्ताचोनी ॥ ४५ ॥
मिट्टी, पत्थर, रेणुका, रेहू, सींक, पयाल;
हैं चीजें सब काम की पत्र, फूल, फल, छाल।
पत्र, फूल, फल, छाल, जटा, जड़, घास विहंगम;
सीपी, हड्डी, सींग, बाल, रद, कोसा, रेशम।
है जितनी ह्याँ उपज जवाहर हो या गिट्टी;
है सब धन का मूल बुद्धि जो होय न मिट्टी ॥४६॥
छाता, कागज़, निब, नमक, काँच, काठ की चीज़,
चुरट, खिलौना, ब्रुश, मसी, मोज़े, बूट, कमीज़।
मोज़े, बूट, कमीज़, बटन, टोपियाँ, पियाले;
बरतन ज़ेवर, घड़ी, छड़ी, तसवीरें, ताले।
करो स्वदेशी ग्रहण नहीं तो तोड़ो नाता;
नीची गर्दन करो तानकर चलो न छाता ॥४७॥

दियासलाई, ऐनकें, बाजे, मोटरकार;
बाइसिकिलें, करगे, दवा, रेल, तार, हथियार।
रेल, तार, हथियार, विविध बिजली के आले;
धूमपात, हल, पंप, अमित औज़ार मसाले:
बनैं यहाँ और खपैं, नहीं तो सुन लो भाई;
देशीपन को अभी लगा दो दियासलाई ॥४८॥
कल है बल उद्योग का कल उन्नति की मूल;
कल की महिमा भूलना है अति भारी भूल।
है अति भारी भूल अगर कोरी कलबल है;
दूरदर्शिता नहीं इसी में सारा बल है।
कल से सकल बिदेश सबल, निष्कल निर्बल है;
भरतखंड! कल बिना तुझे, हा, कैसे कल है! ॥४९॥
जागो जागो बन्धु-गण आलस सकल विहाय;
देश हेत अर्पण करो मन, वाणी अरु काय।
मन, वाणी अरु काय देश-सेवा को जानो;
जीवन, धन, यश मान उसी के हित सब मानो।
वीरजनो! अब खेत छोड़ मत पीछे भागो;
सोतों को दो चेत करो ध्वनि "जागो जागो" ॥५०॥
शिक्षा ऊँचे वर्ग की पावें ह्याँ के लोग;
तभी यहाँ से दूर हो अन्धकार का रोग।
अन्धकार का रोग करै ह्याँ से मुँह काला;
तभी करै जब पूर्ण-कला-दिनकर उजियाला।

विना कला के तुम्हें मिले नहिं माँगे भिक्षा;
कहा इसी से करो वेग सम्पादन शिक्षा ॥ ५१ ॥
वन्दे-वन्दे-मातरम् सदा पूर्ण विनयेन;
श्री देवी परिवंदिता, या निज-पुत्र-जनेन।
या निज-पुत्र-जनेन पूजिता मान्याऽनूपा;
या धृत-भारतवर्ष देश-वसुमती-स्वरूपा।
तामहमुत्साहेन शुभे समये स्वच्छन्दे;
वन्दे जनहितकारी मातरम् वन्दे - वन्दे ॥ ५२ ॥

हिन्दू विश्वविद्यालय के डेप्यूटेशन

के स्वागत में

स्वागत श्रीयुत देशभक्त अभ्यागत प्यारे;
स्वागत स्वार्थ विहाय धर्म के सेवनहारे।
स्वागत स्वागत मातृभूमि के योग्य पुत्रवर;
स्वागत-स्वागत आर्यवंश-अवतंस सु हितकर।
सब पुरवासी स्वागत करें सहित प्रेम की भावना;
श्री विश्वनाथ 'पूरन' करें आगत जन की कामना ॥ १ ॥

काशी पावन भूमि ग्रन्थ बहु महिमा गावैं,
अविनाशी सुखधाम जिसे नहिं प्रलय मिटावें।
तप, विद्या, विज्ञान, नीति, गुण भाये जी के;
रहे जगत-विख्यात सदा काशी नगरी के।
है सज्जन, विद्वज्जन सहित आज धन्य काशी-सिटी;
है धन्य भाग जो ह्वाँ बनै हिन्दू-यूनीवर्सिटी ॥ २ ॥

शुद्ध धर्म का ज्ञान लोप सब विद्या बिन है;
विहित कर्म का ध्यान लोप सब विद्या बिन है।
विद्या बिन हीनता देश की जाय न लेखी;
भारत की अब अधिक दीनता जाय न देखी।
है दशा शोक की सर्वथा हा रमेश विद्या विना;
गति भई देश की अन्यथा हा महेश, विद्या विना ॥ ३ ॥

योरप का है मान मित्रजन विद्या ही से,
है समर्थ जापान बन्धुगन विद्या ही से।
अमेरिका के प्रान्त बड़े हैं विद्या ही से,
दुनिया के सब देश बढ़े हैं विद्या ही से।
प्रिय भारत के उद्धार की उदित हुई जो भावना,
तो बिन विद्या समझो नहीं उन्नति की सम्भावना ॥ ४ ॥
विद्या ही साहित्य-शास्त्र का बोध करावै,
विद्या वैद्यक, शिल्प, कला उद्योग सिखावै।
विद्या खेती, खनिज, बनिज, व्यापार बतावै,
विद्या ईश्वर और जीव का सङ्ग मिलावै।
विद्या बिन धन, बल, मान का रहै निरन्तर शोक है,
विद्या बिन हिन्दू जाति का लोक है न परलोक है ॥ ५ ॥
"है अँगरेजी राज नहीं अब औरँगजेबी",
सुनौ करै उपदेश देश की वसुधा देवी।
अवसर है अनुकूल किये जो कुछ बनि आवै,
आरत भारत पुनः पुरानी महिमा पावै।
बस एकी साधे सब सधै यही चतुर का काम है,
है एक पदारथ इष्ट जो विद्या उसका नाम है ॥ ६ ॥
देश काल की दशा देख के कारज कीजै,
प्रथम समझिए रोग दवाई पीछे दीजै।
खेती, कारीगरी, बनिज की नई प्रणाली,
शिक्षा द्वारा ग्रहण किये होंगे सुखशाली।

इस लिए चेतिए अन्यथा सड़ी-गली अपनी प्रथा,
धन कभी खींचने की नहीं बन्धुवर्ग हठ है वृथा ॥ ७ ॥
देशों की घुड़दौड़ कहो या कहौ कबड्डी,
रहे मीर तुम सदा किन्तु अब हुए फसड्डी।
नहीं अभी कुछ गया बढ़ाओ अब भी साहस,
लो बढ़कर मैदान पास आवै मत आलस।
निज तन, मन, धन अर्पण करो बस फिर बेड़ा पार है,
उद्योग तुम्हारे हाथ है फल-दाता कर्तार है ॥ ८ ॥
यदि भूलैं परलोक नरक के भागी होवें,
जो भूलैं यह लोक दुःख में जीवन खोवैं।
चतुर वही जो यहाँ ध्यान दोनों का रक्खें;
मुक्ति यहाँ ह्वाँ मुक्ति स्वाद दोनों का चक्खै ॥
इसलिए निवेदन आपसे मेरा बारम्बार है;
बिन हिन्दू-यूनीवर्सिटी नहिं सम्भव उद्धार है ॥ ९ ॥
बालक संस्कृत पढ़ैं और अँगरेजी भाषा;
सीखैं शिल्प, कलादि सभी विद्या की शाखा।
कारीगर, खेतिहारि चतुर सौदागर बनके;
हों धन-बल-सम्पन्न मनोरथ ये हैं मन के।
प्रत्येक पक्ष से हो चुका पूरा सोच-विचार है;
बिन कालिज सात प्रकार के नहिं सम्भव उद्धार है ॥१०॥
नई नहीं कुछ बात विश्वविद्यालयवाली;
इसी देश में रही यही प्राचीन प्रणाली।

दस सहस्र एकत्र निवासी हों विद्यार्थी;
करते थे अध्ययन आश्रमों में परमार्थी।
जो उनके भोजन, वसन का मुनिवर लेते भार थे;
'शौनक' 'वशिष्ठ' इत्यादि वे 'कुलपति' परम उदार थे ॥११॥
अन्नदान के लिए घड़ी भर को सुख होवै;
विद्यादान अखण्ड काल को तृष्णा खोवै।
है ईश्वर का नियम उचित फल मिलै किये का;
फल है परमानन्द सुविद्या-दान दिये का।
है देश, काल अरु पात्र सब परम शुद्ध बस लीजिए;
निज लोक और परलोक हित श्रद्धा से धन दीजिए ॥१२॥
यह महत्त्व का कार्य नहीं कुछ ऐसा-वैसा;
फल पावेगा चार इसे जो देगा पैसा।
हैं कोटियों सपूत भूमिमाता के जाये;
ऊँचा देने हेतु हाथ दाहिना उठाये।
है जहाँ कमाई पुण्य की है इसका साझा वहीं;
यह ईश्वर-प्रेरित कार्य है अब रुकनेवाला नहीं ॥१३॥
"हो सुधर्म की हानि जभी जब हे प्रिय भारत;
बढ़े अधर्म महान भक्त सज्जन हों आरत।
साधु-सुरक्षण-हेतु धर्म-संस्थापन के हित,
लेता हूँ अवतार" वचन ये हरि-मुख-प्रकटित ॥
इसलिए देखकर निज प्रथा मग्न महादुख-कूप में;
अवतार धरेगा 'विश्व-पति' विद्यालय के रूप में ॥१४॥

मत समझो यह काम किसी डेप्यूटेशन का,
है यह अपना काम और प्यारी नेशन का।
हो यदि कुछ भी गर्व ओल्ड सिविलीज़ेशन* का;
सुना दीजिए बड़ा हिन्दसा डोनेशन† का।
क्या अधिक और इससे कहूँ मरना-जीना व्यर्थ है;
वह जीता है जो जाति का सेवक हुआ समर्थ है ॥१५॥
एक वर्ण के अङ्ग! चतुर्वर्णीय महज्जन;
कैसे-कैसे हुए बन्धुगण! तुममें सज्जन।
बलि, दधीच, हरिचन्द, राम, हरि, करण, युधिष्ठिर;
किये दान धन, प्राण नाम कर गये चिरस्थिर।
उन पुरुषों की धर्मज्ञता शुद्ध हृदय में लाइए;
रखिए मर्यादा जाति की 'पूर्ण' पुण्य यश पाइए ॥१६॥

---

* प्राचीन सभ्यता। † रक़म चन्दे की।

नये सन् का स्वागत

स्वागत नूतन वर्ष ! समय-द्रुम की नव शाखा !
स्वागत वर्ष नवीन ! जगत जन की अभिलाषा !
स्वागत दर्शन-योग्य मान्य, नूतन अभ्यागत !
स्वागत प्यारे व्यक्ति ! अनोखे स्वागत ! स्वागत ! १ ॥
स्वागत शतत्रय साठ पञ्च दिन गौरव गर्वित !
पञ्चाशत - युत - युग्म, - भव्य - सप्ताह सुगर्भित !*
स्वागत द्वादश मास छटा से आनेवाले !
स्वागत षटऋतुमयी महाछवि लानेवाले ! २ ॥
स्वागत उत्तर-कालसिन्धु के बिन्दु अदर्शित !
स्वागत अलख, विशाल गणित के अंक अनङ्कित !
स्वागत परम भविष्य-चन्द्र की कला शोभना !
स्वागत अश्रुत महाराग की एक मूर्च्छना ॥३॥
कहना भारतवर्ष देश उत्कर्ष वर्षवर ?
चले आइए तात ! रुचिर अनुकूल रूप धर ।
ईसाई सन्-राज ! साधु का करके बाना ।
ईसा-यश के हेतु शान्ति दीजै विधि नाना ॥ ४ ॥
है यह शिशिर-प्रवेश चाहिए कृपा विशाला,
बरसाना दुर्भिक्ष-अनी पर पूरा पाला ।

---

* एक वर्ष में ३६५ दिन और ५२ सप्ताह होते हैं ।

किञ्चित ही है लगी देश-सेवा की गर्मी,
तद्रक्षा-हित उचित आपकी पूरी नर्मी ॥ ५ ॥
भो सन्-सन्त! वसन्त देश में ऐसा आवै,
सम्पत वन में सदा कोकिला सुख को गावै।
उद्यम-द्रुम-समुदाय मोदमय कुसुमित होवैं,
दिव्य सफलता-सुमन देव-पद अर्पित होवैं ॥ ६ ॥
मिलै ग्रीष्म में शीत-सम्मिलन मलय-रास की,
लसै परस्पर प्रीति-पीलिमा अमलतास की।
ईश-भानु-कर-निकर भाव हिम-गिरि पर छावै,
द्रवित मनोरथ-बरफ़ देश-सिंचन को धावै ॥ ७ ॥
पावस में उत्साह-मेघ बरसात मचावैं;
हरी-भरी व्यापार-भूमि की कृषी बनावै।
देशराग-हिंदोल बैठ सज्जन सुख पावैं;
शुभ शिक्षा के मोर, पपीहे शब्द सुनावैं ॥ ८ ॥
शरद्‌चन्द्रिका भरतखण्ड की कीर्ति सुहावै,
परम-हंस-गन-राजहंस-बन बिचरन भावै।
अमल-समय-सर हृदय-कमल-दल रहैं प्रफुल्लित,
सोखै उग्र अगस्त पङ्क जो विघ्न उपस्थित ॥ ९ ॥
मोदवन्द हेमन्त देश में ऐसा बाना,
थर-थर काँपै देश-द्रोह का दल दीवाना।
देशहितैषी धीर प्रथा के गर्म मसाले,
सेवैं, ओढ़ैं नर्म स्वदेशी-प्रेम-दुशाले ॥ १० ॥

नव कौंसिल-संवृद्धि-सिद्धि हो पूर्ण रूप से;
राजा-प्रजानुराग वृद्धि हो पूर्ण रूप से ।
विविध जाति समुदाय-प्रीति हो पूर्ण रूप से;
शासन विधि में नीति-रीति हो पूर्ण रूप से ॥ ११ ॥
हैं ऐसे हो विपुल मनोरथ विपुल हमारे;
है उनका साफल्य पूर्ण विधि हाथ तुम्हारे ।
स्वागत में है विनय बिदा जब होय तुम्हारी;
कहैं लोग सब "था उनीस सौ दस हितकारी" ॥ १२ ॥

नवीन संवत्सर (संवत् १९६७) का स्वागत

स्वस्ति महज्जन ! स्वागत सज्जन ! आशा-भाजन प्यारे !
नव संवत्सर ! समयराज के वत्स रसाल दुलारे !
स्वागत आगामिनी भामिनी के प्रिय बालक बारे !
स्वागत ! स्वागत स्वस्ति नवागत ! आदर-योग्य हमारे ॥ १ ॥
स्वागत काल-विशाल कोश के रत्नजाल चमकीले !
भूप विक्रमादित्य-सुयश के नित्य-रूप दरसीले !
प्रकृति-विकृति के अचिर-चित्रगत अविदित रङ्ग रँगीले !
लुप्तसार संसार काव्य के गुप्त प्रसङ्ग रसीले ॥ २ ॥
स्वस्ति अनन्त समय-कुसुमाकर-अन्तर्गत-नव क्यारी !
स्वागत सर्ग-महासागर की नव तरंङ्ग सुखकारी !
स्वागत मंजु भविष्य-महल के द्वार मनुज मनभावन !
अघटित घटनामय अभिनय के स्वागत दृश्य सुहावन ॥ ३ ॥

माया ने जो काल देश का 'ताना-बाना' ताना;
बुना जगत-पट अमित बने फिर बूटे नाना बाना!
नाम-स्वरूप-क्रियात्मक वह सब पूर्ण-प्रियात्मक जाना:
तुमको भी इक वर्ष उसी में है उत्कर्ष दिखाना ॥ ४ ॥
बन्धु तुम्हारे 'दुर्मति' जी ने मृगवाहन पै चढ़ के;
सार्थक नाम किया दुर्मति ने ली छलाँग चढ़-बढ़ के।
बम की बमचख़ रही मची ही 'शासन'-कोप बढ़ाया,
न्याय-धाम में भी हत्या का अत्याचार दिखाया ॥ ५ ॥
अन्नहानि, ताऊन, कालरा, मलेरिया की पीड़ा;
करते ही सब रहे अभागी भरतखंड में क्रीड़ा।
जो उदार सरकार सुलक्षण रक्षणशील न होती;
भारत जननी सिर धुन-धुनकर आरत धुन से रोती ॥६॥
'दुर्मति' ने प्राचीन चीन में रङ्ग जमाया ख़ासा;
चीनी चोट लगी तिब्बत में अजब लगाया 'लास्सा'।
लामा गुरु पै वार कराया, हिन्द-शरण में लाया;
है सन्देह समाया, देखें होनहार क्या आया ॥७॥
चलते चलते 'पुच्छल तारा' 'दुर्मति' ने दिखलाया!
झाड़ू लिये पड़ा है पीछे गुल ये नया खिलाया।
गत संवत् का कूड़ा सब ये बढ़नी झाड़ बहावै;
तब तू अपनी अमल दुंदुभी विमल बजाता आवै ॥८॥
'मृगवाहन' ने मृगवाहन की कुछ सौम्यता दिखाई;
मार्ले-मिंटो-कृत रिफ़ार्म की सुखद चाँदनी छाई।

गत चुनाव में दया-भाव से किया बड़ा आश्वासन;
जो अनाथ भारत का रक्खा उसी हाथ में शासन ॥९॥
प्रजा-प्रमोद-प्रयत्न-पताका निर्बाधा फहरानी;
पुर प्रयाग में श्री ह्वीव्रट ने शुभ प्रदर्शिनो ठानी।
शासन की सुन रोग-विनाशन अनुशासन की बानी;
होता है आश्वासन जी को सुख की समझ निशानी ॥१०॥
गिरे पुराने पीले पत्ते, निकली प्यारी कोंपल;
हुए दृगों से दूर कड़े दल, लगे सुहाने कोमल।
शोभाशाली है हरियाली सुमन-बेलियाँ फूलीं;
अस्थिर जान अवस्था जग की चिन्ताएँ कुछ भूलीं ॥११॥
चलती नहीं सुगन्धि समीरन मृदु ऋतु के हरकाले;
चले चतुर्दिश मित्र तुम्हारे आगम की चर्चा ले।
फूली सरसों नहीं महीतल पीत-पाँवड़े डाले;
नहीं रँगीले फूल-पताके नाना रंग सँभाले ॥१२॥
नहीं भ्रमर गुञ्जार, करें झनकार बीत के झाले;
पिक का नहीं पुकार, वचन हैं रोचक स्वागतवाले।
नहीं कमलदल-कलित ताल पै ललित भृङ्ग मतवाले;
फूलदार पट पै 'अभिनन्दन' लेख सुनहले काले ॥ १३ ॥
हिन्द-देश को सखा सनातन श्री वसन्त सुखनेमी,
जान मित्र सुख हाथ तुम्हारे हुआ तुम्हारा प्रेमी।
सजे उसी ने साज सकल ये, हे अपूर्व अभ्यागत;
आओ शुभ संवत् प्रसन्न मुख स्वागत! स्वागत! स्वागत ॥१४॥

विमल सत्त्वगुणमयी चैत में चारु चन्द्रिका छाना;
प्रभु अनुराग-पलास प्रभा स कलि-कालिमा मिटाना।
त्रिगुण बोध की त्रिविध पवन से ताप चित्त की हरना;
जान प्रपन्न कृपोबल-गृह सम्पन्न अन्न से करना। १५ ॥
माधव में श्री कृष्णचन्द्र के वचन समझ अनुरागी;
धर्म, भोग अरु कर्मयोग के जाने मर्म सुभागी।
मलिन हृदय वैशाखनन्दनों को घूरे दिखलाना;
देश-प्रताप-दिनेश सुभग का दिन दिन तेज बढ़ाना ॥ १६ ॥
ज्येष्ठ मध्य विपरीत पवन जब तन की तपन बढ़ावै;
फौवारे तू शांति सलिल के शीतल, सुखद छुड़ावै।
अमलतास की पीली पीली सरस प्रभा दरसावै;
गर्मी में भी भरतखण्ड पै रंग बसन्ती छावै ॥ १७ ॥
जब आवै आषाढ़, आस की घनी घटाएँ लाना;
दबे हुए दुर्भिक्ष बीज को बिजली से झुलसाना।
दुर्मतिमय विद्रोहदलों को गरज गरज डरवाना;
पावस-सुख विज्ञप्ति 'दुन्दुभी' श्रद्धा-जनक बजाना ॥ १८ ॥
बगुले देश-भक्त सावन में जभी बृथा झख मारैं;
लोग समझ पाखण्ड सफेदी पर न चित्त को वारैं।
सदुपदेश के मोद, पपीहे पूरा आदर पावैं;
सत्य परिश्रम-प्रेम वृष्टि से प्रजा, भूप सुख पावै ॥ १९ ॥
भादों में 'अति दुःख' कंस के जीवन-खण्डनकारी;
'परमानन्द' कृष्ण जगजन में सकल अमङ्गलहारी।

संयम जमुना तीर मंजु सत्सङ्ग-कुञ्ज मन भावै;
ज्ञान-प्रसङ्ग मधुर बंसी धुनि सुन सुन श्रुति सुख पावै ॥ २० ॥
क्वार करावै राजभक्त-वर राजहंसगण-दर्शन;
अभिलाखा के खिलैं कमलवन हो मन-मधुप-प्रहर्षण ।
भीष्म पितामह आदि पूर्वजों का हो सम्यक् तर्पण;
हो उनका अनुकरण धर्महित हों धन, जीवन अर्पण ॥ २१ ॥
कातिक में हो लक्ष्मी-पूजन भारत-उन्नतिशाली;
दीपावली सुप्रतिभावाली जगै, सजै दीवाली ।
उठे जुआ, चोरी दुनिया से कुटिल नीतिवालों की;
होता हार रहै तीसों दिन कपट प्रीतिवालों की ॥ २२ ॥
मार्गशीर्ष में निर्धन जन पर करुणा पूरी करना;
विपुल वस्त्र सम्पन्न उन्हें कर भीति शीत की हरना ।
भरतखण्ड-दुर्दैव-कोप को करना ऐसा शीतल;
हो न कभी सन्तप्त यहाँ की सन्त-प्रशंस्य महीतल ॥ २३ ॥
पूस मास में देश-हितैषी ऐसी धूम मचावैं;
क्रिसमस के सप्ताह विदित में परमोत्साह दिखावैं ।
पोलिटिकल, धार्मिक, औद्योगिक, नैतिक विविध सभाएँ,
रचें महावार्षिक अधिवेशन पूर्ण सफलता पायें ॥ २४ ॥
माघ मास में सुजन भाव के सुमन सुमंजुल फूलैं;
चञ्चल चित्त-हिंडोल मनोहर मूर्ति श्यामवर झूलैं ।
वेदधारिणी सरस्वती की पूजा जग को भावै;
सत्य, सनातन, सत्कृत विद्या सदा समुन्नति पावै ॥ २५ ॥

फाल्गुन में नरसिंह-भक्त का गुण सच्चा रँग लावै;
हरिजन-त्रासक के कुनाम पर दुनिया धूल उड़ावै।
भीड़ें रँगे हुए स्यारों की फूहड़ शोर न छावैं,
'पूरन' देश रङ्ग में भीगे जग की छटा बढ़ावैं॥ २६॥

शकुन्तला-जन्म

लहन को बर ब्रह्मपद, निज दहन को अघलेश;
वहन को वैराग्य-रस में, सहन को तन क्लेश।
गहन विपिन प्रवेश करि मुनिराज विश्वामित्र;
तप-विधान अनल्प को सङ्कल्प कीन पवित्र ॥ १ ॥
दूब भोजन साधि क्रम सों, बहुरि धूमाहार;
पुनि पवन के पान ही को मानि प्राणाधार।
शान्तरस में जती दिन-दिन अधिक भीजत जात;
काम छीजत जात छिन-छिन जात सूखे गात ॥ २ ॥
डिगत सो निज समुझि आसन पाकशासन लोल;
मैनका सों यों कहे शङ्का-प्रकासन बोल।
"करत जो तप गाधि-नन्दन तासु खण्डन होहि;
अपसरा-बर-बंस-मण्डन तब सराहूँ तोहि" ॥ ३ ॥
देव-बाला, छवि रसाला, बसीकरन-प्रबीन;
सहित हासी चञ्चला सी चपल बीड़ा लीन।
कहे गरबीले रसीले वचन रोचक बाम;
"मैन के बस करहुँ मुनि को मैनका तब नाम" ॥ ४ ॥
भूरि जोबन तपोवन में रह्यो पूरि वसन्त,
हरित मंजुल सुमन-संजुत हरत मनहिं दिगन्त।

वसुमती-युवती वसन की लसन जनु छविसार;
हरी जासु जमीन है रङ्गीन बूटेदार ॥ ५ ॥
लगत हीतल मन्द शीतल पवन परिमल-ऐन:
मनहुँ रोचन मान-मोचन कहति दूती बैन।
गुञ्ज-धुनि अलि-पुंज छावत कुंज-कुंज भकार:
मंजु श्यामा अङ्ग जनु मंजीर को भनकार ॥ ६ ॥
कोकिला, चण्डूल, चातक, चक्रवाक कठोर;
शुक-कपोत, महोक, मैना, लाल मुनिया मोर।
विविध रङ्ग विहङ्ग विहरत करत सुन्दर गान:
मनहुँ मधु नृप-मण्डली सङ्गीत की गुनवान ॥ ७ ॥
नीलगाय, कुरङ्ग, कुंजर आदि पशु-समुदाय:
छेम सों विहरत परस्पर प्रेम-भाव बढ़ाय।
सचिव तप को पाय जनु आदेश पावन देश,
सत्त्वगुणमय चरित कीन्हें त्यागि दुर्गुण लेश ॥ ८ ॥
मैनका जब कीन वन छवि लीन माहिं प्रवेश:
कहत देखनहार है शृंगार नारी-वेश।
करत कोउ अनुमान देवी विपिन की द्युतिमान;
कहत कोऊ है महीतल मध्य शीतल भान ॥ ९ ॥
भ्रुकुटि धनु को डरत नाहीं अरत शुक ललचाय:
चहत अधरन चोंच मारन बिंब को भ्रम खाय।
शंक चंपक रंग की तजि चंचरीक सुपुंज:
भूलि अंग सुगंध पै लगि संग गुंजत गुंज ॥१०॥

द्रुमन सों झरि सुमन सोहैं मनहुँ वन देवीन;
अंगना के पंथ डारे पाँवड़े रंगीन।
तरल नवदल कलित मुकुलित तरु लता लहराय;
पुलकि कर सों मनहुँ स्वागत करति मुद सरसाय ॥११॥
आन बान समेत यहि विधि रूपमान-निकेत;
साधुराज समीप पहुँची काजसाधन हेत।
रथ मनोरथ पैक पग, गजराज गति, मन बाजि;
जनु अनङ्ग चढ़्यो अनी चतुरंगिनी निज साजि ॥१२॥
बन्द लोचन, मन्द स्वासा, तपन तेज अमन्द;
लीन लखि आनन्द में मुनि द्वन्दहीन सुछन्द।
अपसरा सुमनोहरा तब करन लागी गान;
पवन पथ जनु सैन पठई दुर्ग दुर्गम जान ॥१३॥
गई छूटि समाधि उग्र उपाधि गुनि मुनि-भूप;
अधखुले दृग यों लखैं मृगलोचनी को रूप।
करत जिमि बिसराम अपने धाम औचक बीर;
पाय खटका खोलि अर्ध कपाट झाँकै धीर ॥१४॥
बीन के जुग तुम्ब ही तम्बूर हू बिन तार;
कम्बु में कलकण्ठरव कलहंस में झनकार।
नचत खंजन कंज पल्लव करत रञ्जन गान;
वीतराग छके निरखि सङ्गीत को सामान ॥ १५ ॥
पन्नगी, सुविहङ्ग, कुञ्जर, केसरी, इकसङ्ग;
बसत हिल-मिल, लसत निर्मल सत्त्वगुन को रङ्ग।

मानि मन्त्रण अतन को मुनि तपन-काज प्रवीन;
तीय-तन-नूतन तपोवन गमन को मन कीन ॥ १६ ॥
अलङ्कार प्रकार तजि बरनहुँ बिना बिस्तार;
सङ्ग मुनिवर अङ्गना को कीन्ह अङ्गीकार ।
बढ़ी सुरपुरवासिनी की वासना सुरधाम;
कामना सब कामिनी की परी पूरन काम ॥ १७ ॥
गर्विता करि गर्भ धारन अनत कीन पयान;
जाय कन्या-रूप-धन्या फेरि पहुँची आन ।
चाव सों प्रिय हाव सों अति भरी भाव विनोद;
देन चाही बालिका दुति-मालिका मुनि-गोद ॥ १८ ॥
देखि फल तप-भङ्ग तरु को सामने मुनिराय;
फेरि लीन्हों बदन, कर सों अरुचि अति दरसाय ।
कहाँ, वेश्या ! कहाँ 'पूरन' वशी विश्वामित्र;
उचित चित में खचित करिबो मैन-काठिन चित्र ॥ १९ ॥

सरस्वती

कुन्द घनसार चन्द्र हू तें अंग सोभावन्त,
भूखन अमन्द त्यों बिदूखत हैं दामिनी।
कञ्ज-मुखी कञ्ज-नैनी बीना कर-कञ्जधारे,
सोहै कञ्ज-आसन सुरी हैं अनुगामिनी॥
भाव रस छन्दन की कविता निबन्धन की,
'पूरन' प्रसिद्ध सिद्ध सिद्धन की स्वामिनी।
जै-जै मात बानी बिस्वरानी बरदाजी देवी,
आनँद-प्रदानी कमलासन की भामिनी॥ १॥
चारुता नवल कुन्द-वृन्द सी धवल सोहै,
कीरति अपार हिम-धार सो सुहाई है।
सोहै सेत सारी सुचि मोतिन किनारीवारी,
आसन सरोज सेत सोभा सरसाई है।
'पूरन' प्रबीन कर भासै बरबीन बेद,
सेत-मनि-माल सु मराल सुघराई है॥
बानी के प्रकासवन्त ध्यान के निरन्तर यों,
बन्दत अनन्त सुर-सन्त समुदाई है॥ २॥
अली राजहंसन की वारौं हंसबाहन पै,
चारुता पै चाँदनी की आभा चारु वारी है।

सेत-कञ्ज-आसन पै कैरव सुपुञ्जबरे,
नैनन पै खञ्जन की वारी छबिन्यारी है ॥
मंजुल पगनवारी छटा अरविन्दन की,
बीना पै मलिन्दन को वारी गुञ्ज प्यारी है।
मुख पै अमन्द चन्द 'पूरन' की वारी प्रभा,
सारदीय सोभा सारदा पै वारि डारी है ॥ ३ ॥
कुन्द-कुल चाँदनी में 'पूरन' कुमोदिनी में,
सेत वारिजात पारिजात की निकाई में।
गङ्गा की लहर में छहर माँहि छीरधि की,
चन्द तापहर में सुधा की सुघराई में ॥
चित्त की बिमलता में, कला में, कुसलता में,
सत्य की धवलता में, काव्य की लुनाई में।
भासमान बानी ज्ञान-ध्यान के समागम में,
गूढ़ निगमागम पुरान-समुदाई में ॥ ४ ॥
मंजुल बरनवारी कञ्ज से चरनवारी,
सुखमा छरनवारी चन्द्रमा की, रति की।
दुर्मति दरनहारी जड़ता हरनहारी,
स्रद्धा की करनहारी माता मंजु मति की ॥
'पूरन' सरनवारी ग्यानी आदरनवारी,
सेवा स्वीकरनवारी जोगी, सिद्ध, जति की।
अन्तस करनभारी आनंद भरनवारी,
बेद की धरनहारी प्यारी प्रजापति की ॥ ५ ॥

हरि-जस-पावस में कहरै सिखी सी तु ही,
बेद-कुसुमाकर में कूजती पिकी सी है।
तू ही सुखदानी रस-धर्म की कहानी माहिं,
कर्म-बीथिका में बानी दीपिका सी दीसी है॥
नीति-छीर-धारा में उदारा नवनीत तू ही,
मेधा मेघमाला में बसति दामिनी सी है।
ज्ञातन की प्रतिभा सुमति कबिनाथन की,
गायन की सिद्धि तेरे हाथन बिकी सी है॥ ६॥
सनक, सनन्दन, जनक, व्यास-नन्दन से,
रहत सदा से सदा सुखमा सराहन के।
ब्रह्मा अबिनासी विष्णु रहै अभिलासी बने,
भारती को महिमा-समुद्र अवगाहन के॥
'पूरन' प्रकास ही की मूरति सी भासमान,
नेमी है दिनेस से चरन चारु चाहन के।
मोदप्रद सुखद बिसद जोई "हंस पद"
सेवै पदकञ्ज सो बहाने हंस बाहन के॥ ७॥
शब्द के बिकास रूपी भासमान कानन में,
लहे बिन शक्ति तेरी हले नाहिं पत्ता है।
'पूरन' अपार शक्ति व्यापी है उदार तेरी,
चौदहूँ भुवन बीच जेती बुद्धिमत्ता है॥
जोग में, मनन में, सुमति में, प्रवीनता में,
ग्यान में, बिचार में, बिवेक में महत्ता है।

जगत चराचर को बीज है प्रणव-मन्त्र,
बीज ताहू मन्त्र को सरस्वती की सत्ता है ॥ ८ ॥
बाहन अनूप है बिबेक को स्वरूप ऐसो,
सुखद बिसद जो जगत बर बानो है।
सेवक अनूप है गनेश-सुर-भूप ऐसे,
बन्दना को मुदित बिधान जिन ठानो है ॥
ग्यान की अनूप राजधानी है प्रकास रूप,
जामें बसिबे को मुनि बृन्द ललचानो है।
दान में लुटाये होत 'पूरन' अधिक ऐसो,
बिद्या को अनूप बिस्वरानी को खजानो है ॥ ९ ॥

कादम्बरी

करके सुर तालन को बिसतार, सितार प्रवीन बजावती है।
परिपूरन रागहु के मन में, अनुराग अपार जगावती है॥
गुन-आगरी भाग सोहाग भरी, नव नागरी चाव सों गावती है।
छविधाम है नाम है 'कादम्बरी" धुनि कादम्बरी की लजावती है ॥१॥
मन खेंचति तार के खैंचत ही, उमहै जब "जोड़" बजावन में।
उमगैं मधुरे सुर की लहरी, गहरी "गमकैं" दरसावन में॥
चपलाई हरै थिरता चित की, अँगुरी "मिजराव" चलावन में।
मनभावन गावन के मिस बाल, प्रवीन है चित्त चुरावन में॥ २॥
ए मन सोरठ देस हमीर, बहार बिहाग मलार रसीली।
शंकरा सोहनी भैरव भैरवी, गूजरी रामकली सरसीली॥
गौर बिलावल, जोगिया सारँग, पूरिया आसावरी चटकीली।
बोल समै के बजायौ करै, तिय गायो करै मिलि तान सुरीली॥ ३॥
दृग सौंहैं सितार के सोहैं मनै, गति ध्यान में सोहैं चढ़ी भ्रु व बेली।
सुर भेद भरे परदे तिन में, भई जाति सी लीन प्रवीन नवेली॥
कर बाम की बाम की चञ्चल आँगुरी, देखि फबै उपमा ये अकेली।
नट-राज मनोज की नाचैं मनो, इकतार है पूतरिया अलबेली॥४॥

लखि कोमल आँगुरी नागरी की, अति आगरी तार बजावन में।
अनुमान रचैं मन 'पूरन' को, उपमान की खोज लगावन में॥
दल मंजु अशोक को कम्प समेत, वृथा कवि लागे बनावन में।
सुरताल थली यह कञ्ज कली, भली नाचती राग के भावन में॥५॥
उर प्रेम की जोति जगाय रही, मति को बिनु यास घुमाय रही।
रस की बरसात लगाय रही, हिय पाहन से पिघलाय रही॥
हरियाले बनाय के रूखे हिये, उत्साह की पैगैं झुलाय रही।
इक राग अलापि के भाव भरी, षट राग प्रभाव दिखाय रही॥६॥

——